



## निवेदन

हमारे प्रथम पुण्योदय से इन वर्ष ( संवत् १९६५ वि० मे )  
प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य धैर्यवान् शान्तमूर्ति अनेक शुभ  
गुणालंकृत पूज्यवर श्री १००८ श्रीसुबचन्द्र जी महाराज की अपार  
कृपासे जन्मू मे प्रिय व्याख्यानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री हीरा-  
लाल जी महाराज, तपस्वी मुनि श्री १००७ श्री नानकराम जी म०  
और तपुवचस्क तपस्वी मुनि श्री १००५ श्री दीपचन्द्र जी महाराज  
व० ३ का चालुर्मास सुख शान्ति और आनन्दपूर्वक सन्पन्न हुआ  
है इन मुनिराजों की असीम कृपा और उपदेश से स्थानीय जैन  
संघ में पर्याप्त धार्मिक प्रगति हुई है । तपस्या और धर्म-ध्यान भी  
अच्छा हुआ है । विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि प्रातस्मर-  
णीय स्वर्गीय श्रीमज्जैनाचार्य शास्त्र-विशारद सौम्यमूर्ति अनेक  
गुणालंकृत पूज्यवर श्री १००८ श्री मुन्नालाल जी म० और आदर्श  
तपस्वी श्री १००८ श्री बालचन्द्र जी म० के उपदेश से स्थापित श्री  
जीव-दया-फंड जन्मू जो कुछ समय से शिथिल पड़ गया था वह  
प्रिय व्याख्यानी पं० मुनि श्री हीरालाल जी म० के उपदेश से पुन-  
र्संचालित हो गया है । और उक्त फण्ड को सुचारु रूपसे संचा-  
लन करने के लिए उद्देश्य और नियम आदि श्री जैन सभा जन्मू  
की स्वीकृतिपूर्वक निर्माण किये गये हैं । और मुनिजी के सद्बोध  
से जैन विराइरी (संघ) के प्रत्येक घरमें क्रमशः नित्यम्प्रति  
आयन्वित की परिपाटी प्रारम्भ होगई है । इस प्रकार महाराज

श्री ते चानुर्माण होने से हमारे हाथ ना मिलने का संसार हुआ है ।

अनप्य इय चानुर्माण की पुण्य-शक्ति से जैन-सभा जम्मू द्वारा सं-तलिन श्री महावीर जैन-सभा जम्मू की ओर से यह "श्राद्धं चरितम्" प्रकाशित किया जा रहा है । श्राद्ध दे पाठक महोदय इस पुस्तक को पढ़ कर लाभान्वित होंगे ।

श्री महावीर जैन-सभा स० १९७६ वि० क्रमीय में स्थानीय नव-युवकों के प्रयत्न से श्री जैन-सभा जम्मू की सभवा में स्थापित हुई थी । इस सभा के उद्देश्य—जैन धर्म-प्रचार, समाज के नवयुवकों का संगठन और विद्या प्रचार करना थे । उक्त सभा ने सामाजिक और धार्मिक कई काम किये हैं । स्थानीय समाज में जागृति पैदा करने का श्रेय इसी सभा का है । इसी सभा ने जम्मू में महावीर जयन्ति उत्सव में प्रथम सभा का आरम्भ किया था । और श्री जैनसभा से इसी सभा ने अनुरोध करके श्री महावीर जैन रात्रि-पाठशाला तथा श्री महावीर जैन लायब्रेरी तथा रीडिंग रूम स्थापित करवाये थे । तथा वही सभा संवत् १९८३ वि० तक जैन सभा जम्मू की आर्थिक सहायता से उक्त सभी संस्थाओं का संचालन भली भाँति कर रही थी । किन्तु अब इस संस्था का कार्य-शिथिल हो जाने के कारण उपरोक्त संस्थाएँ पुनः श्री जैन सभा जम्मू द्वारा सुचारु रूप से चल रही हैं ।

## आभार-प्रदर्शन

शास्त्र-विशारद प्रवर्तक पं० मुनिश्री १००८ श्री हजारीमलजी म०, मनोहर व्याख्याती पं० मुनिश्री १००८ श्री सुख मुनिजी म० और प्रिय व्याख्याती श्री हीरालालजी म० के हम अतीव आभारी हैं, कि जिनकी असीम कृपा से यह आदर्श चरितम् हमें प्राप्त हुआ है।

प्रिय व्याख्याती मुनि श्री हीरालालजी महाराज को भी हम हार्दिक धन्यवाद देना कभी नहीं भूल सकते, कि जिनके सद्बोध से प्रेरित होकर हम इस चरित को प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं।

अन्त में हम यह कहे बिना नहीं रहेंगे, कि इस आदर्श चरितम की हिन्दी भाषा के नशोधन तथा प्रकृ रीडिंग में उत्साही युवक श्री० दीपचन्द्रजी सुराना गंगधर (भालावाड़) निवासी ने पर्याप्त परिश्रम किया है। और इसके निरगे तथा सादे क्लार्कों की टिप्पण, प्रिंटिंग आदि कार्य में देहली निवासी उन्माही चन्द्र श्री द्वारना प्रसादजी जैन ने काफी बड़ी धूप की है। इसके लिए हम उपरोक्त दोनों महाशयों को हार्दिक धन्यवाद समर्पण करते हुए उनके प्रति आभार प्रदर्शन करते हैं।

श्री मंत्र के मन्त्र सेवक

ईश्वरदान श्रीमदाचार्य

त्रिलोकचन्द्र जैन

प्रेसिडेंट

सेक्रेटरी

श्री महाशय जैन मना जगन्



## \* प्रस्तावना \*

---

संसार का यह नियम है कि वह जीवन के संचालन में धार्मिकता और आचरणहीनता को सांसारिक व्यवस्था में पाश्चात्य विचारों में तो इसी सिद्धान्त पर विचार करने दिया गया है। भारत में राजनीति को धर्म के अभाव में उसमें शुभ आचरण की कुछ अनिवार्यता अर्थात् धर्म के अभाव में उसको धर्म से विलकुल प्रथक् करके अर्थात् धर्म के अभाव में दम सन्बन्ध विच्छेद कर दिया गया है। अर्थात् धर्म के प्रतिज्ञा करना, राष्ट्रहित के नाम पर धर्म के अभाव में निराश्रित नागरिकों पर वस वरमान के अभाव में आचरणहीनता जन्य है। भारत में धर्म के अभाव में धर्म के अभाव में धर्म का समावेश करके उसको बहुत कुछ अर्थात् धर्म के अभाव में धर्म का समावेश करने का यत्न किया जा रहा है।

ने उनको कौटिल्य नाम दिया था । किन्तु जैन नीतिकारों ने जैन धर्म के धर्मप्रधान होने के कारण कौटिल्य की उस व्याख्या को कभी स्वीकार नहीं किया और वह बराबर आचरणशुद्धि पर जोर देते रहे ।

आज भारतवर्ष ने संसार के मन्मुख अपने उस प्राचीन सिद्धान्त को फिर व्यावहारिक रूप में स्थापित किया है । महात्मा गांधी ने धर्म को राजनीति से प्रथक् रखने हुए भी राजनीति में आचरण शुद्धि को अनिवार्य बतलाया है । जिस समय महात्मा गांधी ने अहिंसा द्वारा भारत को स्वतंत्र करने का आन्दोलन आरंभ किया तो उस समय अनेक राजनीतिज्ञों ने उनकी हंसी उड़ाई, कई एक ने तो उनको निर्बल एवं कायर तक कह डाला । किन्तु उन्होंने आलोचकों की कोई चिन्ता न करके यह भी घोषणा की कि अहिंसामयी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिये यह आवश्यक एवं अनिवार्य है कि वह मन, वचन और कर्म से पूर्ण अहिंसक बना रहे और सब प्रकार के सासारिक प्रभोभनों से बचना हुआ पूर्णतया सदाचारी हो । आज संसार इस बात को जानता है कि महात्मा गांधी पूर्णतया व्यवहारिक एवं सफल प्रमाणित हुए, जब कि उनके आलोचक अव्यवहारिक एवं असफल प्रमाणित हुए । यद्यपि आजकल कांग्रेस आरामतल्लव एवं समयसाधु ( मिले हुए अदमर से लाभ उठाने वाले ) पुरुषों से भर गई है, किन्तु महात्मा गांधी फिर भी आचरण शुद्धि पर बल देते हुए उससे आचरणहीन

व्यक्तियों को निकाल देने की योजना बना रहे हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि आचरण शुद्धि लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, राजनीतिक अथवा व्यवहारिक सभी प्रकार के जीवन में आवश्यक है। अपने जीवन को पवित्र बनाने का सबसे सुगम उपाय है पवित्र जीवन वाले महापुरुषों की जीवन गाथा का अध्ययन करना।

अतएव इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान ग्रन्थ 'आदर्श चरितम्' को पाठको के मन्मुख उपस्थित किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज का जीवन चरित्र है। जैसे तो हिन्दी संस्कृत तथा प्राकृत में जीवनचरित्रों की इतनी भरमार है कि उनको पढ़ना भी कठिन है, किन्तु पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज के इस जीवनचरित्र में कुछ ऐसा विशेषता है जो अन्य सारिक व्यक्तियों के जीवनचरित्र में नहीं पाई जाती।

पुरुष हृदय स्वभाव से ही पतनशील है। तनिक रसा प्रलोभन भी बड़े र धीरे धीरे पुरुषों के हृदय को चलायमान कर देता है। फिर अंधन और कामनी या प्रलोभन तो संसार में सबसे बड़ा पलायन है। भारतवर्ष के साधुओं और ब्रह्मचारियों की जीवन घटनाओं पर सामूहिक रूप से विचार करने पर पता चलता है कि उनमें से अनेक ऐसे निधेय थे, जिनका विवाह होना तो दूर, उनमें भरपेट अन्न तक नहीं मिलता था, जिन्होंने यह आगे चल करके साधु या ब्रह्मचारी बन गए। अनेक व्यक्ति विद्वान् होकर



भी पत्नी मर जाने से जन्तुवारी या मातृवन गण । कदा ऐसे थे जिनका पिता ही नका था, किन्तु जो अपनी पत्नी का पेट पालने में असमर्थ थे, अतः वह कमाने पमाने को पिता से दृष्टने के निम्ने मातृ या जन्तुवारी बन गए । अनेक व्यक्ति आजीविका का व्यवसाय ही ही भी अनुकूल पत्नी न पाने से मातृ बन जाते हैं । अनेक व्यक्ति घर वालों के साम्यवाणों से विद होकर घरबार छोड़ देते हैं । किन्तु प्रभूत कदमन और अनुकूल कामिनी पाकर घर केवन आत्मोज्ज्वल की भावना से घर को परित्याग करने वाले विरले ही शूर होते हैं । आचार्यश्रीभूवन्द जी ऐसे ही थीर आत्मा हैं । आपके घर में सामाजिक सम्पत्ति की कमी न थी । आपकी सामाजिक जीवन की पत्नी अत्यन्त पतिपरायणा, सुन्दरी, अनुकूल एवं आक्षाकारिणी थी । आपके पिता का भी आपसे अगाध स्नेह था । आपके भाई आदि अन्य कुटुम्बी भी आपके सब प्रकार से अनुकूल थे । अतएव हम प्रकार के सुख साधनों के रहते वैराग्य की भावना उत्पन्न होना अलौकिक आश्चर्य के अतिरिक्त और कुद्ध नहीं है । हम बात को इतिहास के सामान्य पाठक भी जानते हैं कि गौतम बुद्ध के ससार के महापुरुषों में गिने जाने का कारण उनके उपदेश की अपेक्षा उनका त्यागपूर्ण जीवन ही अधिक है, इतिहास लेखक उनके अपनी प्यारी पत्नी यशोवरा तथा अल्पायु पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़ कर चले जाने की घटना का वर्णन अत्यन्त भादुक शब्दों में किया करते हैं । साहित्य के विद्वानों ने इस

घटना के आधार पर अनेक नाटको, काव्यों तथा गद्य ग्रन्थों की रचना करके इस बात के महत्त्व को प्रगट किया है। जैन जाति के लिये यह बात कम सौभाग्य की नहीं है कि उसने भी ऐसे वीर नररत्न को उत्पन्न किया, जिसने बुद्ध के समान अपनी पत्नी को जानबूझ कर छोड़ दिया। बल्कि एक बात में तो आचार्य खूबचन्द्र जी गौतम बुद्ध से भी बढ़ जाते हैं। सम्भवतः गौतम बुद्ध का आत्मा गृहत्याग करते समय बलवान् नहीं था। उनको भय था कि पत्नी के स्नेह सिक्त शब्दों के माधुर्य में उनका गृह-त्याग का निश्चय डगमगा न जावे। अतः वह पत्नी से पष्ट कुछ भी न कह कर चोरों के समान छिप कर भागे और केवल उस समय उसके सामने प्रगट हुए जब उनकी कीर्ति नए धर्म के प्रवर्तक के रूप में भारतवर्ष भर में फैल गई।

आचार्य श्रीखूबचन्द्र जी महाराज के चरित्र में आरम्भ से ही दृढ़ता दिखलाई देती है। वह साहसपूर्वक अपना विचार अपने कुटुम्बियों को सुना देते हैं। पिता से वह गृहत्याग के विषय पर खुले दिल से वादविवाद करते हैं और घर को छोड़ कर चले जाते हैं। किन्तु जैन मुनियों ने एक बड़ी अवर्द्धत मर्यादा स्थापित की हुई है। वह घर वालों की अनुमति के बिना किसी को भी मुनिदीक्षा नहीं देते। आचार्य खूबचन्द्र जी महाराज घर से तो चले आए, किन्तु इस मर्यादा की दीवार ने उनके मार्ग को एक दम रोक दिया। परन्तु वह तो अपने निश्चय पर पर्वत के समान अचल थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था

कि सब प्रकार की कठिनाइयों को पार करके भी जिनदीक्षा ग्रहण की जावे। अस्तु, उन्होंने अपने पिता को अनुमति देने का संदेश भेज कर अपने आपको फिर एक कठिन परीक्षा के लिये तय्यार किया। वास्तव में यह परीक्षा संसार की सब से कठिन परीक्षा थी। पिता ने आपको निम्वाहेड़ा बुला कर आपके सामने आपकी पत्नी को कर दिया। वर्तमान पुस्तक का इस प्रसंग पर होने वाला पति-पत्नी संवाद वास्तव में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इस संवाद को पढ़ कर सहसा यह उपमा मन में आ जाती है कि एक निर्बल प्राणी एक अत्यन्त ढालू पर्वत पर खड़ा है। उसको एक स्त्री नीचे की ओर खींच रही है, किन्तु एक पुरुष उसको ऊपर की ओर खींच रहा है। आचार्य श्री का आत्मा वास्तव में उस समय समार रूपो अत्यन्त ढलुवां पहाड़ी पर खड़ा था जिमको उनकी पत्नी नीचे को खींचती थी और आचार्यश्री उसको ऊपर को खींच रहे थे। पहाड़ी से नीचे की ओर को खींचने वाला व्यक्ति कैसा ही निर्बल होने पर भी ऊपर से खींचने वाले बलवान से बलवान पुरुष को भी नीचे को खींच लेता है, किन्तु आचार्य स्वचन्द्र जी अलौकिक शक्ति सम्पन्न थे। उन्होंने अपनी शक्ति से न केवल अपनी पत्नी को निरन्तर कर दिया वरन् उससे दीना लेने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। वास्तव में पति पत्नी का यह संवाद बुद्ध के 'मार-विजय' वाली कथा को स्मरण कराता है।

यद् कदा जा नदता है कि आचार्य श्री ने अपने इत्यादि कि

लिये एक मनी अथवा जो छोड़ कर उच्चकोटि की स्वार्थपरता का परिचय दिया। किन्तु वनेमान ग्रंथ को पढ़ने से इस प्रश्न का उत्तर भी अपने आप ही मिल जाता है। यद्यपि घर से आप स्वार्थभावना से पृथक् हुये थे, किन्तु आपके मन में सदा परोपकार के भाव लगे रहे अतएव आपने पूरे वर्ष भर सामान्य रूप से और चातुर्मास्य में विशेष रूप से कल्याणकारी उपदेश देकर सदा ही जनता का कल्याण किया। इतना ही नहीं, वरन् आप कल्याण के इन्हीं संदेश को सुनाने के लिये उसी प्रकार अपने नगर निम्बहेड़ा में गये, जिस प्रकार गौतम बुद्ध अपनी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल और पिता शुद्धोदन को उपदेश देने के लिये कपिलवस्तु गये थे। यह प्रसन्नता की बात है कि बाद में आचार्यश्री की पत्नी भी जैनदीक्षा को लेकर आर्यिका बन गई और कुछ घोर तपस्या कर रही हैं।

वनेमान् पुस्तक में आचार्यश्री खूबन्द जी महागज के चरित्र के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती पांच आचार्यों का संक्षिप्त चरित्र देकर उनके शिष्यों के नाम भी दिये गये हैं। इन सब बातों को देखकर यह कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थ का नाम 'आदर्श-चरित्रम्' ठीक ही रखा गया है।

यह कहा जा सकता है कि आदर्श चरित्र को अन्य सम्प्रदाय के साधुओं का भी हो सकता है। किन्तु उन मतानुसारियों के प्रति पूर्ण आदर प्रकट करते हुए भी हम इस युक्ति को नहीं मान सकते। हमारी मन्मति में अहिंसा सम्प्रदाय सर्वोत्तम वर्ण

## ‘अहिंसा परमो धर्मः’ ।

भगवान् महावीर ने आज से अठ्ठाई सहस्र वर्ष पूर्व इसी अहिंसा का उपदेश दिया था और आज महात्मा गांधी भी उसी अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। अन्य धर्मों पर धार्मिक आक्षेप न करते हुए भी हम को यह कहने के लिये विवश होना पड़ता है कि अहिंसा धर्म का पालन जैनियों के समान संसार का अन्य कोई धर्म नहीं करता। जैनियों के अतिरिक्त संसार में इसाई और बौद्ध भी अहिंसा के प्रचारक बनने का दावा करते हैं। किन्तु इन दोनों ही धर्मों में मांसभक्षण को वैध माना है गया। बाइबिल में कई स्थलों पर स्वयं ईसा मसीह के मांस भक्षण करनेका उल्लेख किया गया है। बौद्ध धर्म में तो मृतक प्राणी का मांस खाने में कोई पाप ही नहीं माना जाता। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष के बुद्ध चरित्र को देखने से प्रगट है कि बुद्ध की मृत्यु उस रोग के कारण हुई थी जो उसको शूकर का मांस न पचने के कारण हुआ था। बौद्ध साधु आज कल भी अधिक संख्या में मांस खाते हैं। वर्तमान समय के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु महापंडित राहुल सांकृतायन जी जब हम से दिसम्बर १९३६ में स्वर्गीय चैरिस्टर कांशी प्रसाद जायसवाल के स्थान पर पटना में मिले तो उन्होंने ने यही हास्य किया, “शास्त्री, जी आपको मोटा होने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि आप मांस नहीं खाते?”

इसमें कोई संदेह नहीं कि बुद्ध ने प्राचीन काल में भगवान् ५ १२ के समान वेदों के नाम पर की जाने वाली पशु हिंसा

का विरोध किया था, किन्तु इसके साथ ही उन्होंने ने मृतक मांस खाने का विधान भी कर दिया था। वास्तव में बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग है। वह न तो जैनियों के समान घोर तपश्चरण करके शरीर को कष्ट देने का ही समर्थन करता है और न प्राचीन काल के वैदिक राजकों एवं वामसागियों के समान अत्यन्त भोगमय जीवन व्यतीत करने को ही पसंद करता है। इसी लिये उसने भोजन के विषय में भी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करते हुए मृतक मांस का विधान किया है। संभवतः यहां इस बात को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि मांस भक्षक कभी भी पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। महात्मा गांधी ने भी इसी लिये अहिंसा के अनुयाइयों को मांस भक्षण न करने का आदेश दिया। बल्कि महात्मा जा तो इससे आगे यहां तक बढ़ गए कि उन्होंने प्राणियों के दूध तक का परित्याग कर दिया। केवल प्राण रक्षा के ध्यान से डाक्टरों के अत्यंत अनुरोध से बकरी के दूध को अपने लिये छूट रखी हुई है। यहां एक बात अत्यंत रोचक है। गौतम बुद्ध ने अपने अनुयाइयों में मृतक मांस का विधान किया तो महात्माजी मृतक चर्म का विधान करते हैं। उनका कहना है कि प्राणियों को उसी प्राणि के चमड़े का जूता पहिनना चाहिये जो अपने आप मर गया हो। कसाई-खाने में मारे हुए प्राणी के चर्म के जूते पहिनने के आप घोर विरोधी हैं। किन्तु आचार्य श्रीखूबचन्द जी महाराज इससे भी आगे निकल गए हैं कि वह जूता मृतक मांस का जूता तो

पैर में कोई भी गम्बु नहीं पठिनने । जैन मुनियों का यह नियम है कि वह अपने आगे की चार हाथ भूमि को देगकर नंगे पाव-ही चला करते हैं, जिससे कोई प्राणि उनके पांव के नीचे न आ जावे ।

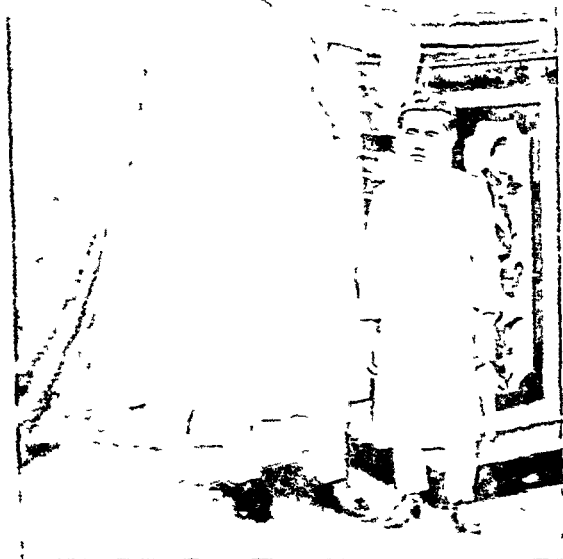
वास्तव में ऐसे चरित्र को ही आर्द्रश चरित्र कहना चाहिये और यही 'आर्द्रश चरित्र' है ।

इति शम

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री M O Ph , H. M D  
काव्य-साहित्य तीर्थ आचार्य,  
प्राच्य विद्या वारिधि, आगुर्वेदाचार्य ।

८११ धर्मपुरा देहली

१६ जनवरी १९३६ ई० ।



चिरंजीव शायद मूरजमल जी मुजली और उनके पृथ्व पिता  
धर्म-श्रेणी स्वर्गीय लाना लोदनमल जी जैन जैहरी  
मार्च बाडा देहली -





ॐ वन्दे वीरम् ६

# आदर्श चरितम्

—६—

## प्रथम परिच्छेद

मङ्गलाचरण

श्रीवीरः सर्वदिग्गोः कनकरुचिनृगोचिरुदीमर्दीपै-  
र्मङ्गल्यःमोऽस्तु दीपोत्सव इव जगदानन्दमन्दर्भकन्दः ।  
वृत्तिदिव्यप्रभीयं मृदुविशदपदा मानसे धीयमाना,  
भव्यानां भव्यभूत्यै भवतु भवतुदे भावना भावितानाम् १।

भावार्थ—जो सब दिशाओं में वृगम सुवर्ण जन्मि वने  
शरीर की प्रभा रूपी प्रखलित दीपों से जगत् में पूरे जगत्  
प्रद, माङ्गलिक दीपोत्सव के समान है । तथा जिनमें दिव्य प्रका  
संयुक्त मधुर और स्पष्ट-वाक्य-मन्त्र-विन, दिव्य भजन सेवकों  
भव्य प्राणियों के श्रुतियों को परित्यक्त करने वाले तथा मन्दार-वर्ण  
हैं । वे ही परम पवित्र वीर भगवान् मन्त्र से निर-मङ्गल प्रकान  
हो ॥१॥

जयतु दुर्नयपद्मजनीवने, हिमनतिर्मतिकैरनकौमुदी ।  
शमयितुं तिमिराणि जने महागृजिनभाजिनभाजिनभार्गी

भानार्थ—नीतराग प्रभु की नागी, दुर्नीति रूपी कमल । वन में  
श्रोम के समान, बुद्धि रूपी कुमाँदिनी को विहाग करने के लिए  
चंद्रिका के समान, तथा पाप रूपी अन्धकार को निवारण करने  
के लिए दिव्य प्रभा के समान है । इस पवित्र जिन नागी की  
श्रद्धेय जय हो ! विजय हो ॥ १२॥

यैः क्षुण्णाः प्रमग्निवेकपत्रिणा क्रोपादिभूमिभृतो-  
योगाभ्यासपरश्वधेन मथितोयैमोहधात्रीरुहः ।

वद्धः संयमसिद्धमन्त्रविधिना यैः प्रौढकामज्वरः,  
तान्मोक्षैकमुखानुपङ्गरमिकान्वन्दामहे योगिनः ॥३॥

भावार्थ—जिन साधुओं ने अपने अपूर्व विस्तृत ज्ञान रूपी  
वज्र के द्वारा क्रोधादि पर्वतों को चूर्ण-विचूर्ण कर डाला है !  
तप-रूपी तीक्ष्ण कुल्हाड़े द्वारा मोह रूपी वृक्ष को समूल नष्ट कर  
डाला है । और संयम रूपी सिद्ध-मन्त्र द्वारा इस दुर्जय काम ज्वर  
को बाँध लिया है । उन मोक्ष रूपी अक्षय सुख के अनुरागी, मुक्ति-  
रसिक साधुजनों को सादर वन्दना करते हैं ॥ ३ ॥

मोहोयत्परिसेवया विघटते ज्ञानं चित्तोभासते,  
भव्यानां परिसेवनीयः सुपथोयस्माच्च संजृम्भते  
तिर्यग्मानुपदेवनारकगतीस्त्यक्त्वा च कर्मव्रजम्,  
मुक्तिं यान्ति जनाः सदा स जयतात् श्रीजैनधर्मोमहान्



आसीद्वासववृन्दवन्दितपद्मद्वन्द्वः पदं सम्पदाम्,  
तत्पद्माम्बुधिचन्द्रमागणधरः श्रीमान् सुधर्माभिधः ॥६॥

भावार्थ— सिद्धार्थ-कुल-दिवाकर श्री चर्द्धमान स्वामी के चरण-रज-सेवक, सर्वरित्र आदर्श मुनि-मण्डल में अग्रगण्य, इन्द्र द्वारा वन्दनीय, पवित्र चरण-युगत वाले, सम्पत्तियों के आयतन और श्री चर्द्धमान प्रभु रूपी समुद्र के लिए चन्द्रमा के तुल्य श्रीमान् 'सुधर्म स्वामी' नामक गणधर हुए ॥६॥

तद्गच्छाश्रयतोऽभृशुरनुपा गच्छाः पवित्राशया-  
स्तन्मध्ये भुवि विद्यते च हुक्मीचन्द्राख्यगच्छोऽधुना ।  
तत्राप्ते मुनिश्रवचन्द्रमुमतिर्विश्वम्भराभामिनी,

भाम्यङ्गालललामकोमलयशः स्तोमः शमारामभूः ॥७॥

भावार्थ— श्री सुधर्म स्वामी के गच्छ में, उनके आज्ञानुवर्ती, उच्च प्रतिभाय वाले अनेक गच्छ हुए हैं। जिनमें से एक पवित्र गच्छ श्री हुक्मा-चन्द्र जी म० के नाम से विख्यात हुआ। जो इस समय विद्यमान है। उन्हीं श्री हुक्मा-चन्द्र जी म० की सम्प्रदाय में हमारे चरित्रनायक मुनि श्री श्रवचन्द्र जी महागुरु, जो कि महाबुद्धि के महागुरु हैं, सुशोभित हुए हैं। आपकी कोमल नीति का समूह, शक्ति से शयन कर, पृथ्वी-गण्डल के उत्तरी ललाट पर स्थित रह रहे हैं ॥७॥

सः श्रीयुक्तपौषनस्त्रिपथगा पाथः प्रवाहेन्नि,  
स्वैः सत्य यशोवतः निर्विचलं पारिव्यदासुप्रितम् ।

गाम्भीर्यादिगुणोज्ज्वलः शुभपरः श्रीजैनधर्मे मतिः,  
तस्याहं चरितं जनेषु विदितं वक्तुं भवाम्युद्यतः ॥८॥

भावार्थ—गंगा-जल के प्रवाह के नमान जिनके कीर्ति-समूह से, पृथ्वी-तल पवित्र हो गया है। जहाँ, तपोधन नाथ सौम्य-गाम्भी-र्यादि गुणों से नम्यन्न, कल्याणकारी, जैन धर्म पर अदृष्ट श्रद्धा रखने वाले, हुनि श्री चन्द्रचंजी म० के परम आदर्श चरित्र को, जो कि विश्व-विख्यात है, वर्णन करने के लिये मैं प्रयुक्त हुआ हूँ।

जन्म-भूमि

श्रीभारते भारतवर्षिगज्यं, श्रीकान्तसामन्तकपूरग्राज्यम् ।  
नववादनाहदयशोभिभ्राज्यं, समस्ति लक्ष्म्या भुविटोंकगज्यम्

भावार्थ—इस धर्म-प्राण भारतवर्ष में, कान्ति की दशां करने वाला चरित्र राज-पुत्रों से समूह से सुगोभित समृद्धिवाली, राज-पुत्राना प्रान्त से उत्तर्गत श्रीमान नवाद नाहद के यग से गोमा-यमान, लक्ष्मी से विनमित एव टोंक नामक राजस्थान है ॥९॥

सौभाग्यशैल्यगते तरण्याः, वज्रः स्थले राजति हांग्यष्टिः  
तथैव राज्ये शुभधामयष्टिः, निम्नाहटा राजति पूः समष्टिः

भावार्थ—इस टोंक नामक राजस्थान में भव्य-भवनों की वज्रों से सुगोभित, एव निम्नाहटा नामक परम स्तोत्र की वज्र नामक है। जो इस राजस्थान का भूधर है। वज्र टोंक इस प्रकार सौभाग्यमन् है, जिन प्रकार जि किनी सौभाग्य-पुत्रा वज्रों से एव स्थल पर वज्रहार सुगोभित होता है ॥१०॥

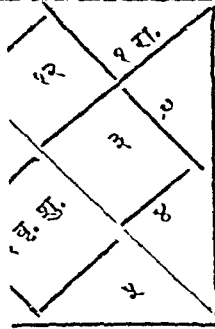
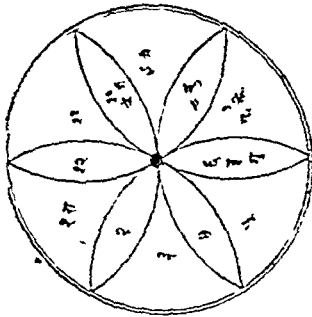
कन्याएँ, यों छः सन्तानों से संयुक्त, श्री सेठ टेकचन्द्रजी अपने अधिक उत्कृष्ट भावों से विशेष धर्मा राधना में तत्पर हुए ॥१६॥

जन्म और बाल्यावस्था

वर्षे व्योमगुणाङ्कभूपरिमिते श्रीवैक्रमीये शुभे  
 शुक्ले कार्तिकमासके बुधदिनेऽष्टम्यां तिथौ सम्मिते ।  
 पुत्रःश्रीयुतखूबचन्द्रगुणधीः सम्प्राजनिष्ठावनौ,  
 आत्माऽयं जगतः सदागतिसमस्तेजोभिः समलंकृतः ॥१७॥  
 स्वस्थाने मकरे स्थितः शशिपुतः सूर्यस्य पुत्रः शनिः  
 नन्दाङ्केऽवनिनन्दनः गुरुसितौ कन्यागतौ रेजतुः ।  
 राहुर्मेषगतोबुधश्चवसुगः सूर्यस्तुलायां यया-  
 वित्थं तस्य तदा वभौ ग्रहगणः मीनस्य लग्ने शुभे ॥१८॥

भावार्थ—सूर्य के समान तेजस्वी, अनेक शुभ गुणालंकृत, हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्द्र जी म० का शुभ जन्म विक्रम संवत् १६३० के कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार के दिन हुआ था । उस समय मीन लग्न था । और शनि, अपनी राशि मकर में, चन्द्रमा सहित शोभायमान था । मङ्गल धन में, तथा बृहस्पति एवं शुक्र कन्या में, स्थित थे । मेष में राहु और वृश्चिक पर बुध था । सूर्य और केतु, तुला राशि पर थे ॥१७-१८॥

चरित्रनायक जी की जन्म कुण्डली  
श्री शुभ संवत् १६३० वि० कार्तिक शुक्ला = बुधवार



यज्जन्मन्यभवन्प्रसन्नवदनाः काष्ठा गृहान्तःस्थिताः,  
दीपाः कान्तिविलोपकार्भकभयाद्बन्दा पतद्वृत्तयः ।  
उद्भूतप्रतिभाद्भुतस्य मतिमच्चन्द्रस्य चिद्रुपता,  
माहात्म्यं स्तुमहे किमस्य निखिलग्रन्थाब्धिमन्थात्मनः  
सूत्रस्तातगृहाङ्गणे तु ववृधे कल्पद्रुमोन्न्दने,  
विन्ध्याद्राविवकुञ्जरोमणिगणः श्रीरोहणे पर्वते ।  
सोऽयं कान्तिसुसारशालिवपुषा पित्रोर्ह दाहादकः,  
संसारे सुमनोमनोरमगुणैर्देवेन तुल्यो बभो ॥२०॥  
चन्द्रः पक्ष इवामले च कमले कोशः शुचावम्बुदः,  
कन्दोऽम्भोधितले मनोरमगुणैः श्रीवैद्रुमः पादपे ।



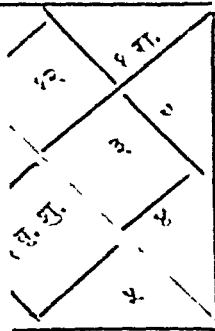
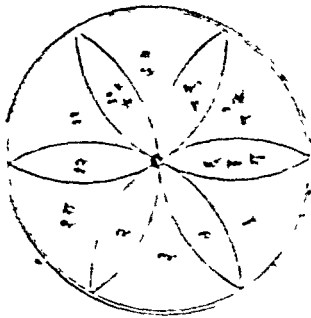
कन्याएँ, यों छः सन्तानों से संयुक्त, श्री सेठ टेकचन्द्रजी अपने अधिक उत्कृष्ट भावों से विशेष धर्मारोपना में तत्पर हुए ॥१६॥

जन्म और बाल्यावस्था

वर्षे व्योमगुणाङ्कभूपरिमिते श्रीवैक्रमीये शुभे  
शुक्ले कार्तिकमासके बुधदिनेऽष्टम्यां तिथौ सम्मिते ।  
पुत्रःश्रीयुतम्बूचन्द्रगुणधीः सम्प्राजनिष्ठावनौ,  
आत्माऽयं जगतः सदागतिसमस्तेजोभिः समलंकृतः ॥१७॥  
स्वस्थाने मकरे स्थितः शशिपुत्रः सूर्यस्य पुत्रः शनिः  
नन्दाङ्केऽवनिनन्दनः गुरुसितौ कन्यागतौ रेजतुः ।  
राहुर्मेषगतोबुधश्चवसुगः सूर्यस्तुलायां यया-  
वित्थं तस्य तदा वभौ ग्रहगणः मीनस्य लग्ने शुभे ॥१८॥

भावार्थ—सूर्य के समान तेजस्वी, अनेक शुभ गुणालंकृत, हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्द्र जी म० का शुभ जन्म विक्रम संवत् १६३० के कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार के दिन हुआ था । उस समय मीन लग्न था । और शनि, अपनी राशि मकर में, चन्द्रमा सहित शोभायमान था । मङ्गल धन में, तथा बृहस्पति एवं शुक्र कन्या में, स्थित थे । मेष में राहु और वृश्चिक पर बुध था । सूर्य और केतु, तुला राशि पर थे ॥१७-१८॥

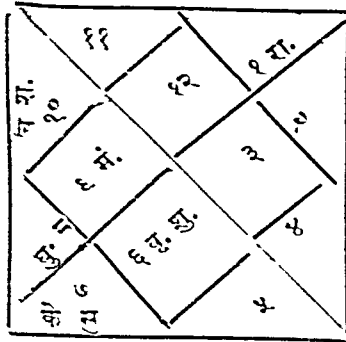
चन्द्रिनाम जी जी जन्म मुद्रा  
श्री गुरुभक्त्यन १६३० वि० चन्द्रिनाम गुणा = बुधवार



यज्जन्मन्यभवन्प्रसन्नवदनाः काष्ठा गृहान्तःस्थिताः,  
दीपाः कान्तिविलोपकार्भकभयाद्गन्दा पतद्बृत्तयः ।  
उद्भूतप्रतिमाद्भुतस्य मतिमच्चन्द्रस्य चिद्रुपता,  
माहात्म्यं स्तुमहे किमस्य निखिलग्रन्थाब्धिमन्थात्मनः  
स्वस्तातगृहाङ्गणे तु ववृधे कल्पद्रुमोन्न्दने,  
विन्ध्याद्राविवकुञ्जरोमणिगणः श्रीरोहणे पर्वते ।  
सौष्यं कान्तिमुसारशालिवपुषा पित्रोर्हृदाहादकः,  
संसारे सुमनोमनोरमगुणैर्देवेन तुल्यो बभौ ॥२०॥  
चन्द्रः पत्र इवामले च कमले कोशः शुचावम्बुदः,  
कन्दोऽम्भोधितले मनोरमगुणैः श्रीवैद्रुमः पादपे ।



चरित्रनायक जी जी जन्म कुण्डली  
श्री शुभ संवन १६३० वि० कार्तिक शुक्ल = बुधवार



यज्जन्मन्यभवन्प्रमन्नवदनाः काष्ठा गृहान्नःस्थिताः,  
द्रीपाः कान्तिविलोपकार्भकमयाब्रन्दा पतद्वृत्तयः ।  
उद्भूतप्रतिभाद्भुतस्य मनिमच्चन्द्रस्य चिद्रुपता,  
माहात्म्यं स्तुमहे किमस्य निखिलग्रन्थाद्विमन्यात्मनः  
सुवन्नातगृहाङ्गणे तु वृषे कल्पद्रुमानन्दने,  
विन्ध्याद्राविवहुञ्जरोमणिगराः श्रीरोहणे पर्वते ।  
नोऽयं कान्तिसुनारशालिवपृषा पित्रोर्ह दाहादकः,  
नानारे सुमनोमनोग्मगुरौर्देवेन तुल्यो बभौ ॥२०॥  
चन्द्रः पञ्च इवामले च कमले कोणः शुचावम्बुदः.  
कन्दोऽम्भोधितले मनोग्मगुरौः श्रीवैश्रमः पादपे ।



यावन् बुद्धिबलं जहार सकलाः विद्याश्च सोयं सुधी-  
स्तातस्तं प्रददौ धनं सुमनसा विद्यागुरोरर्चने ।  
विद्याप्राप्तिरिह त्रिधा सुविनयैरर्थैः पुनर्विज्ञया,  
जानन्नोतिमिमां विचारचतुरः सर्वोचितार्थप्रदः ॥२२॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक श्री खड्गचन्द्र जी ने अपने बुद्धि-  
बल के अनुसार अनेक विद्यार्थों को सम्पादन किया । और उनके  
पूज्य पिता श्री टेकचन्द्र जी ने भी विद्यागुरुओं के लिए पर्याप्त  
धन व्यय किया । क्योंकि वे यह भली भाँति जानते थे, कि विद्या-  
प्राप्ति के केवल तीन ही साधन हैं । यथा—(१) गुरु की सेवा  
करना (२) विद्या के बड़े विद्या का दान देना और (३) विपुल  
धन राशि का प्रदान करना । इन साधनों के अनिश्चित विद्या-प्राप्ति  
का और कोई चौथा साधन नहीं है ॥२२॥

नोऽयं षोडशवार्षिकोऽभवदथ स्पष्टैर्गुणैर्दक्षता,  
दायाधैर्गुणैश्चत्सुभारतभुवि ग्रामैः करैश्च परम् ।  
लोकानां नयनेषु रूपकमला रेखा अनेका दृढा,  
दुष्टानन्दमगोपरोचकतया चित्तैषु चाश्चर्यतः ॥२३॥

भावार्थ—श्रीगणेशदि गुरुों से विभूषित, परम मौन्दर्वशाली  
श्री खड्गचन्द्र जी ने सोलह वर्ष की आयुमें ही, अपनी स्वभाविक  
तत्त्वबोधोपरी अत्यधिक बुद्धि का परिचय देकर जनसन्मान को  
आश्चर्य से टाल दिया और उनके हृदयों में स्थान कर लिया ॥२३॥

पौरुधीशुभगीतिनाप्यनुगतोमेडम्य द्वागं यगो ॥३३॥  
 तत्रानन्दपरमनया म निवमन् नाणिज्यदत्तः सुधीः,  
 लक्ष्म्याश्चार्जनतः पितुः सुमनमः प्रीतिः पदं प्रार्जयन् ।  
 चित्ते धर्मपरः सदा मुखकरोमातुश्च सेवापरः,  
 प्रीत्यानन्दकरोऽभवत् स मुजनः सर्वस्य मन्नोपदः ॥३४॥

भावार्थ—इस प्रकार विवाह का कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात्, श्री खूबचन्द्र जी अपने भार्या श्रीमती साकरदेवी सहित, अपने सास-श्वसुर से विदा हुए । और अनेक प्रकार के आभूषणों तथा पुर-निवासी जनों से संयुक्त होकर उन्होंने अपने ग्राम निम्बा-हेड़ा की ओर प्रस्थान कर किया । निम्बाहेड़ा में प्रवेश करते ही पुरन्धरियों ने नाना प्रकार के मंगल-गीत गाए । और बधाइयाँ दीं फिर बड़े ही स्वागत समारोह पूर्वक उन नव विवाहित वर-वधू को घर पर लाया गया । अब हमारे चरित्रनायक व्यवसाय-कुशल श्री खूबचन्द्र जी अपने वाणिज्य कौशल द्वारा अटूट लक्ष्मी का संचय करके अपने पिता श्री टेकचन्द्र जी के मन को परम संतुष्ट करने लगे । तथा यथोचित सेवा-भक्ति द्वारा माता जी के चित्त को भी पूर्ण प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे । इस प्रकार वे प्रेम-भाव तथा धार्मिक भाव से अपने गृहस्थ-जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करते हुए जनता के हृदय को आनन्दित करने लगे ॥३३-३४॥







## द्वितीय परिच्छेद



### वैराग्य की उत्पत्ति



वाणिज्यादिकलोककार्यकरणाद्भ्रोघनं प्रार्जयन्,  
वैराग्यांशुरभावपूर्वमनसा श्रीखुवचन्द्रः सुधीः ।  
धर्मश्चापि विदन् सुनीच सततं संवन्दमानः मुहु-  
र्गार्हस्थ्ये गमयां बभूव स युवा तुयोपि वयोपि नः ॥३४

भावार्थ—इस प्रकार वाणिज्य-विकास-विशारद श्री खुवचन्द्रजी ने गृहस्थ-प्रवस्था में केवल चार वर्ष रह कर, अटूट धन-राशि का सम्पादन करने हुए, निर्मय-मुनियों का भी पर्याप्त सम्मंग किया । अर्थात् केवल इन चार वर्षों में ही उन्होंने मुनिराजों की सेवा-सुश्रूषा और चर-सन्तनादि करने हुए, उनसे सन्धि-धर्म का स्वरूप समझ कर उसे प्रदयंगम किया । अतः अतः उनके हृदय में वैराग्य का संसार हो गया ॥३४॥



वीर-व्रत की आराधना से तत्पर होकर राम के समान मुक्ति रूपी सीता से संयुक्त हो जाऊँ ॥३७॥

औचित्याद्दुःशुक्रशालिनीं हृदय ! रे शीलाङ्गरागोज्वलां-  
श्रद्धा ध्यानविवेकमण्डनवतीङ्कारूपयहाराङ्किताम् ।

सद्गोधाञ्जनरञ्जिनीं परिलसच्चारित्रपत्राङ्कुरां-  
निर्वाणं यदि वाञ्छसीह परमं चान्तिं प्रियां भावय ॥३८॥

भावार्थ—हे हृदय ! यदि तू वास्तव में निर्वाण-प्राप्ति की कामना करता है, तो औचित्य रूपी वस्त्रों से सुसज्जित शीलाङ्ग रूपी समुचित अनुराग से उज्ज्वल, श्रद्धा, ध्यान और सद् विचार रूपी आभूषणों से अलङ्कृत, कृष्णारूपी हार से सुशोभित सद्बोध रूपी अञ्जन से युक्त और सच्चारित्र रूपी पत्राङ्कुर से मण्डित, उत्तम जमा रूपी स्त्री को प्राप्त करने की भावना कर ॥३८॥

सत्यं बुद्बुद्गुरं धनमिदं दोषप्रकम्पं वपु-  
स्तास्त्वयं तरले क्षणाक्षितरलं यिद्युच्चलं दोर्वलम् ।  
रे रे जीव ! गुरुप्रसादवशनः किञ्चिद्विधेहि द्रुतं-  
स्वात्मध्यानतपोविधानविषयं श्रेयः पवित्रं परम् ॥३९॥

भावार्थ—निस्सन्देह यह धन जल के बुद्-बुद् के समान, जल-  
भङ्गुर है। शरीर, दीप-प्रवम्ब के समान चञ्चल है। यह जीवन्-  
न्दी के नेत्र-बटाल की तरह सरसदायी है। और यह जलुबल-  
चञ्चल चपला के सतग अस्थिर अर्थान् चलायमान है। धनः है



चित रक्षा करते हुए गृहस्थ-धर्म को योग्य रीति से पालन करना चाहिए। हे वत्स ! तू ही मेरे गृह का सुदृढ़ और सुन्दर मूल स्तंभ है। और तू ही मेरा जीवन है ! हे सुमति-प्रवीण ! तेरे घर में सत्कुलोत्पन्न, परम सदाचारिणी और सुपुत्र रत्न-प्रसविनी, रत्न-गर्भा वसुन्धरा के तुल्य, पतिव्रता भार्या है। अतएव, हे वेदा ! तुझे फल की वाञ्छा सहित कुछ काल तक अवश्य ही गृहस्थ-धर्म का पालन करने में कटिबद्ध होना चाहिए ॥४१॥

येनेह क्षणभङ्गुरेण वपुषा क्लिन्नेन सर्वात्मना-  
सद्व्यापारनियोजितेन परमं निर्वाणमप्याप्यते ।  
प्रीतिस्तेन हहा पितः ! प्रियतमा संपर्करागोद्भवा-  
क्रीता स्वल्पसुखाय मूढमनसा कोट्या मया काकिणी ॥४२

भावार्थ—अपने पूज्य पिता श्री टेकचन्दजी के वचनों को सुन कर श्री खूबचन्दजी उन से नम्रता पूर्वक निवेदन करने लगे, कि हे पूज्यपाद पिताजी ! जिस क्षणभंगुर और घृणास्पद शरीर को अच्छे कार्य में लगाने से, मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। उसी शरीर को, स्त्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाले, क्षणिक सुख के लिए, प्रीति का पात्र बनाना, महान् भूल करना है। और यह भूल भी कोई साधारण भूल नहीं, किंतु एक करोड़ रुपये के बदले एक कौड़ी को खरीदने वाले व्यक्ति की भूल के समान महान् भयंकर भूल है ॥४२॥



आपनी सेवा में कर दिया है । अतएव अब आप जैसा भी उचित समझें, वैसी आज्ञा प्रदान करें ॥४४॥

कवलयति समग्रं वस्तुजातं कृतान्तः,

अविरतकृतयत्नः क्रूरभावोपन्नः ।

क्षणमपि न कदाचित्तस्य पार्श्वं गतस्य,

भवति मनसि जन्तौ नैव कारुण्यभावः ॥४५॥

भावार्थ—क्रूर भाव से संयुक्त हो कर जब मृत्यु सब वस्तुओं का संहार करतो है । तब उस समय सब प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं । अर्थात् मृत्यु के हृदय में, कित्ता भी प्राणी के प्रति दया का भाव उत्पन्न नहीं होता है ॥४५॥

शरीरं ममास्तीति मत्वा विमोहात्,

प्रसक्तिं दृढांमात्रं कुर्याः कदाचित् ।

मृदाः निर्मिताः पौद्गलाः सर्वभावाः-

स्वतत्त्वेषु लीनाः भवन्ति क्षणेन ॥४६॥

भावार्थ—मोह के वशीभूत हो, 'यह शरीर मेरा है' ऐसा मान कर किसी भी व्यक्ति को अपने शरीर से प्रेम नहीं करना चाहिए । क्योंकि यह सब पौद्गलिक पदार्थ मिट्टी वगैरह पाँच तत्वों से बने हुए हैं । और क्षण-भर में अपने-अपने तत्वों में लीन हो जाते हैं ॥४६॥



विमिरमतिनियन्त्री श्रीगुरुज्ञानगोष्ठी,  
 भवजलनिधिनौका तत्कृपापूर्णदृष्टिः ।  
 विषयरतिविमुक्तिर्यत्र दानानुरक्तिः,  
 शमदमयमशक्तिर्मन्मथाराति भक्तिः ॥४७॥

भावार्थ—सद्गुरुओं की ज्ञान पूर्ण गोष्ठी, अज्ञानान्धकार को नष्ट कर देती है । उनकी कृपा-पूर्ण दृष्टि, संसार रूपी समुद्र के लिए नौका के समान है । विषय-प्रेम का त्याग ही दान है । शम दम एवं यमादि की शक्ति का संचय करना तथा काम-शत्रु वनना ही वास्तविक भक्ति है ॥४७॥

श्रुतिमतिवलवीर्यप्रेमरूपायुरङ्ग-  
 स्वजनतनयकान्ता आठुपित्रादिसर्वम् ।  
 तितलगतजलं वा न स्थिरं वीक्षतेऽङ्गी,  
 तदपि वत विमूढो नात्मकृत्यं करोति ॥४८॥

भावार्थ—श्रवण-शक्ति, बुद्धिबल, वीर्य, प्रेम, आयु और शरीर तथा अपने वन्धु-बांधव पुत्र, स्त्री, भाई और पितादि सब. चलनी में गए हुए जल के समान, अस्थिर हैं । किंतु खेद है, कि इस वान को जानते हुए भी, यह मूढ़ आत्मा, अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता है ॥४८॥

जिनशुभपदभक्तिर्भाविना जैनतत्त्वे,  
 विषयसुखविरक्तिर्मित्रता सत्त्ववर्गे ।



















आदर्श चरित्रम्

श्री श्रीगणेशाय नमः  
श्री श्रीगणेश जी महाराज





हो जाय । और दुष्ट जन भी अपनी दुष्टता को छोड़ कर उदार करने लग जाय । तदपि यह नांस्तानिक तथा कौटुम्बिक मोक्ष-जान पूर्ण मोक्ष-मार्ग प्राप्त कराने के लिए कर्मा भी समर्थ नहीं हो सक्ता है ॥६३॥

मृत्युव्याघ्रभयङ्कराननगतं भीतं जराव्याधन-  
 र्नात्रव्याधिदुर्गन्तदुःखतरुमल्पमाग्नांतागमम् ।  
 कः शक्नोति शर्गरिणं त्रिभुवनं पानुं नितांतातुं,  
 त्यक्त्वा योगधनाश्रितं सुख्यं जैनद्रं वाचसाम्बरम् ॥६॥



भी स्त्री से ही उत्पन्न होते हैं। जिनके द्वारा मनुष्य एवं प्राणी मात्र के हितकारक एवं मोक्ष-मार्ग-प्रदर्शक शास्त्रों का एवं साधु-माधवों श्रावक-भाविका रूप चारों तीर्थों का उद्घाटन होता है। और उन धर्म-शास्त्रों तथा तीर्थों से, हमें हमारे मन्मूर्ख पाप तानों का विनाश होकर वाया रहित सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। इमनिचे हे पुत्र ! स्त्री को सच्चे सुख की देनेवाली और अचड़ी समझ कर ही मज्जन पुरुष स्वीकार करते हैं ॥६५॥

सत्यं मन्त्री विपत्ता भवति रतिविधा दासिका या मुद्रा,  
 लज्जालुः नाविर्गीता गुरुजनविनता गेहर्ता गेहवृत्त्ये ।  
 भक्त्या पत्न्या नरवीया स्वजनपरिजने धर्मकर्मवनिष्ठा,  
 गार्हस्थ्ये नाल्पपुण्यैः नकलगुणनिधिः प्राप्यते स्त्री न यमन्यैः

भावार्थ—हे पुत्र ! स्त्री स्वयं से सत्य मन्त्री का काम देती है। प्रेमानुराग से बहुत बारीक कामना कार्य करती है लज्जा और शील मयुक्त, अनिर्मल गुरुजनों की विनय-भक्ति करनेवाली, गृहकार्यों में दक्ष पति-भक्ति परादाता स्वधर्म-धर्म से बहुत तथा स्वजन परिजनों से अलग-अलग करनेवाली मन्त्री होने की शक्ति स्त्री मनुष्यों को स्वयं पुरुषों से प्राप्त नहीं होती है किन्तु गतान् एषोऽप्येव हे ही ऐसी सर्वशुद्ध-मन्त्रिणी ही प्राप्त होने का सौभाग्य मिलता है ॥६६॥

लब्धा वा मुद्रयन्त्या पानमुत्पन्ना बीदिनात्पञ्चकम्,



स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां शुचिभतिः श्रीमन्दसौरस्थले,  
धर्मध्यानमनाऽत्रमीद्विनयतः सस्जावरास्थानके ॥७१॥

भावार्थ—तदनन्तर हमारे चरित्रनायक, धर्म-ध्यान-परायण, वैराग्य-भावी श्री खूबचन्द्रजी ने संसार से विरक्त हो कर, शुद्ध-हृदय से पंच परमेष्ठी का स्मरण एवं ध्यान करते हुए नीमच की तरफ प्रस्थान किया। तथा वहाँ से मनासा नारायणगढ़ और मन्दसौर होते हुए जावरा पहुँचे ॥७१॥

प्राधानीन्मुनिसत्तमान् शुभकरान् श्रीरत्नचन्द्रोज्वल-  
श्रीमज्जवाहरलालसौम्यचरित श्रीनन्दलालादिकान् ।  
हीरालालपवित्रपादकमलं नत्वा च तत्रस्थले .

प्राश्रौपील्ललितं जिनेन्द्रचरितं व्याख्यानमुक्तिप्रदम् ॥७२॥

भावार्थ—जावरे पहुँच कर वहाँ मुनियों ने श्रेष्ठ, शुभद्वार, निर्ग्रथ-मुनि श्री रत्नचन्द्रजी श्री जवाहरलालजी एवं सान्यचरित्रजी श्री नन्दलालजी तथा श्री हीरालालजी म० आदि मुनिवरों के चरण-कमलों को स्पर्श कर के नमस्कार किया। फिर उनके मुक्ति-पथ-प्रदर्शक एवं जिनेन्द्र के निमल चरित्र पर प्रकाश डालनेवाले छोजस्त्री व्याख्यान को सुन कर फिर वहीं विधाम किया ॥७२॥

सश्रद्धाभरभाजनं जिनपतेर्ध्यानं विधत्ते मुदा.

व्याख्यानामृतसिञ्चनेन सुधिया वैराग्यपूणेक्रियाम् ।

अग्रेतां गजगामिनीं प्रियतमां पृष्टेऽपि तां सर्वदा,

धात्र्यां तां गगनेऽपि तां किमपरं सर्वत्रतामीक्षते ॥७३॥



भक्तियों—जब श्री गणेशजी इन निर्भय-मुनियों की पावन सेवा में रह कर इनके व्याख्यानामृत में अपने हृदय प्रवेश को सिद्धि करने लगे । तब: इसके फलस्वरूप ये परम श्रद्धा-पूर्वक जिनेन्द्र-भक्ति-व्याख्या होकर सुदृढ़ वैराग्य में ऐसे निमग्न हुए, कि छाथी के समान मल हो गये । और उन्हें आगे-पीछे पृथ्वी-मण्डल तथा आकाश-मण्डल आदि सभी स्थानों में वैराग्य-ही-वैराग्य दृष्टिगोचर होने लगा ॥७३॥

श्रद्धानाम नरस्य शक्तिरधिका श्रद्धा सुरस्पन्दिनी,  
संसारविधकानने विचरतां सन्देहविध्वंमिनी ।  
श्रद्धा सर्वभयापहातनुभृतां शान्तिप्रदा सिद्धिदा,  
श्रद्धा का सकलापदां भवरुजां दिव्यौषधं कामदम् ॥७४॥

भावार्थ—श्रद्धा ही पुरुष की उत्तम शक्ति है । श्रद्धा ही कल्याण का परम सुन्दर रथ है । शुद्ध श्रद्धा के प्रभाव से ही संसार-रूपी वन में घूमनेवाले पुरुषों के सन्देहों का नाश होता है । श्रद्धा ही सब प्रकार के भयों से विमुक्त करने वाली, शरीर अपूर्व शान्ति का प्रसार करने वाली तथा सकल सिद्धि प्रदायिनी है । यह श्रद्धा, एक ऐसी दिव्य और रामबाण औषधि है, कि जिसके द्वारा भव-रोगों का शमन तथा आपत्तियों का विनाश होता है ॥७४॥

श्रद्धा पात्र प्रकर्तव्या, श्रद्धा सन्देहनाशिनी ।  
श्रद्धा सौख्यकरी पुंसां, श्रद्धा मुक्तिप्रदायिनी ॥७५॥

भावार्थ—यह श्रद्धा सब प्रकार के सन्देह को नष्ट-भृष्ट करने वाली और सौत्य तथा मुक्ति की देने वाली है। अतः प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है, कि वह शुद्ध श्रद्धा को अपने हृदय में स्थान दे ॥५५॥

श्रुत्वा स्वीयसुतस्य साधुशरणं श्रीटेकचन्द्रोवणिक्,  
वात्सल्याश्रुभृतेक्षणोभटिति सः प्रायाच तत्र स्थले ।  
नत्वा गद्गदभाषया मुनिवरान् प्रोवाचवार्णां सुत-  
मीशांश्च प्रभया गृहस्थसकलं कार्यं गुणिन् ! पुत्र मे ॥

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्द्रजी ने, जब अपने प्रिय पुत्र श्री खूबचन्द्र जी के सम्बन्ध में यह समाचार सुने, कि वह साधुओं की शरण में रह कर वैराग्य-भाव में रमण कर रहा है, तो उनके नेत्रों से पुत्र-वात्सल्यता के नाते प्रेमाश्रु प्रवाहित हो चले। वे तत्क्षण ही जावरा पहुँचे। और वहाँ विराजित समस्त मुनि-संघ के पावन चरणों में वन्दन करने के पश्चात् वे गद्गद् हो कर अपने पुत्र से कहने लगे, कि हे पुत्र ! तू गृहस्थात्म का कार्य कर ॥५६॥

गार्हस्थ्यानुपदाश्रयेण लभते मुक्तिं जनः श्रद्धया,  
तच्छुभ्राशययोपितोऽस्ति सुत ! मे योगाश्रमं मोक्षदम् ।  
किं तत्त्वं परिदायपूर्णमुत्तमं योगे मतिं धीपते,  
संतारास्थितिकारणाय शुचिदां संसाधुहि स्वः श्रियम् ॥

भावार्थ—शुद्ध श्रद्धा पूर्ण गृहस्थाश्रम का सहायक रूप है







न मृत्युं स्वासन्नं व्यपगतमतिः पश्यति पुनः ॥७६॥

भावार्थ—इस संसार के प्राणी शरीर, धन, स्त्री आदि के मोह में फस कर प्रति दिन दूसरों की तरफ देखते हुए इस बात की गणना करते रहते हैं, कि 'वह मर गया, वह मर रहा है, एवं वह मरेगा, यह सब दृश्य देखते तथा जानते हुए भी वे मन्द बुद्धि बनकर यह विचार नहीं करते हैं, कि हमारे लिए पर भी मृत्यु मँहरी रही है और हम भी एक-न-एक दिन इस कराल काल के उदर में समा जायेंगे ॥७६॥

श्रियोपायाघातास्त्रुणजलचरं जीवितमिदं,

मनश्चित्रं स्त्रीणां भुजगकृटिलं कामजमुखम् ।

क्षणध्वंसीकायः प्रकृतितरले यौवनधने,

इति ज्ञात्वा सन्तः स्थिरतरधियः श्रेयनिरताः ॥८०॥

भावार्थ—लक्ष्मी क्षणभ्यामी है । जीवन घात पर स्थित जल-विन्दु के सदृश पल में नष्ट होने वाला है । शरीर भी क्षण-धनानी है । और यौवन तथा धन तो स्वभाव से ही चञ्चल हैं । ऐसा जान स्थिर बुद्धि वाले सज्जन अपने षट्पाद में तत्पर होते हैं ॥८०॥

अनित्यं निर्ग्रायं जननमरणप्राधिकृतं,

जगन्मिथ्यापाशैरुमहामिवालिङ्गितमिदम् ।

दिक्षिन्धैवं नन्तो विमलमनसो धर्मदत्तय-

न्तपः कर्तुं श्रुतान्तदपस्तये जैनमनघम् ॥८१॥



भावार्थ—यह लक्ष्मी तो केवल यही कुछ दिनों के लिए सुख देने वाली होती है। यह तरुणी भी केवल इस युवावस्था में ही मन-हरण करने वाली बनकर अत्यन्त प्रीति की पात्र होती है। सांसारिक सुख दिवली के समान चंचल है। और व्याधियों से भरा हुआ यह शरीर भी चलायमान है। ऐसा विचार कर सज्जन पुरुष सदैव ब्रह्म-अर्धान् आत्म-सुख में संलग्न हो जाते हैं ॥२३॥

न कान्ता कान्ताते विरहशिखिनो दीर्घनयना.

न कान्ता भूपथी जलधिलहरीवत्तरलिता ।

न कान्तं ग्रस्तांतं भवति च जरयावनमतः.

श्रयन्ते ते सन्तः स्थिरसुखमयीं मुक्तिवनिताम् ॥२४॥

भावार्थ—दीर्घ नेत्र वाली स्त्री विरह के प्राप्ति होने पर अग्नि के समान हो जाती है। और पृष्ठ से प्राप्ति की गई राज्य-लक्ष्मी भी समुद्र की तरंगों के समान चंचल है। युवावस्था का शारीरिक लौक्य भी युवावस्था के अगमन के कारण नष्ट-भूष्ट और दुःख हो जाता है। इसलिए सत्पुरुष स्थायी सुखों से परिपूर्ण हुम्नि स्त्री की जो ही अपने आधीन रहते हैं ॥२४॥

वग्नाएषादि परेषा यत्र मिलने भूना व शय्या तथा,

रक्षंश्च पुनवपात्रभास्करां पौषदिकान् तथा ।

शीतर्धाप्सयुतेषु पादचरुनं वंटादिपूरैः पथि,

ता एषे तपसे एतेन भवतावहं दधं नरते ॥२५॥



भावार्थ—तब उनके पिता कहने लगे, कि जिस मुनि वृत्ति में वस्त्र भी दूसरों से उपलब्ध होते हैं। और पृथ्वी पर ही सोना पड़ता है। कन्धे पर पुस्तक एवं पात्रादि का भार लाद कर शीत ग्रीष्मादि के असह्य कष्टों को सहन करते हुए, कंटकाकीर्ण मार्ग में पैदल चलना पड़ता है। यों मुनि-अवस्था के तप और त्याग के द्वारा अपने लिए तू क्यों कष्टों को आमंत्रित कर रहा है? ॥८५॥

क्रोधाद्युग्रचतुष्कपायचरणोव्यामोहहस्तः पितः,

रागद्वेषनिशातदीर्घदशनोदुर्वारमारोद्भुरः ।

सञ्ज्ञानाङ्कुशकौशलेन समहा मिथ्यात्वदुष्टद्विषः,

नीतो येन वशंवशीकृतमिदं तेनैव विश्वत्रयम् ॥८६॥

भावार्थ—तब फिर पुत्र ने पिता जी से कहा, कि हे पिता जी! क्रोधादि चार कपाय रूपी चार पैर, मोह रूपी सूँड एवं राग-द्वेष रूपी दो बड़े लम्बे-लम्बे दाँत वाला तथा प्रबल काम-विकार रूपी मदसे उन्मत्त समता रूपी गन्ध हस्ति को, जिस पुरुष ने अपने सद् ज्ञान रूपी अकुश से वश में कर लिया है। उसने मानो तीनों लोकों को अपने वश में कर लिये है ॥८६॥

योगे पीनपयोधराश्रिततनोर्विच्छेदने विभ्यताम्,

मानस्यावसरे चट्टक्तिविधुरं दीन मुखं विभ्रताम् ।

विश्वेपे स्मरवह्निना तु समयं दन्दह्यमानात्मनां,

रेरे सर्वदिशासु दुःखगहनं धिक्कामिनां जीवनम् ॥८७॥





नाथ ! त्वद्विरहोऽधुना हिमरुचिरचण्डाङ्गशुलचायते,  
हेमन्तस्य हिमानलोऽपि दहनज्वालावलीलायते ॥६३॥

भावार्थ—तदनंतर सौभाग्यवती श्री साकरदेवी ने अपने पति श्री खूबचन्द जी को इस प्रकार वैराग्याल्लु देल कर अपने अश्रुपात से चरण धोते हुए स्नेह पूर्वक कहा, कि हे नाथ ! इस समय तुम्हारे विरह से चन्द्रमा शीतल होते हुए भी सूर्य के समान उष्ण संतापकारी मालूम होता है । और हेम ऋतु की शीतल पवन भी अग्नि के समान शरीर को दग्ध करती है ॥ ६३ ॥

न स्नेहः कुसुमे सुखं न भवने प्रेमा न पङ्केलहे,

न प्रीतिः पवने रतिर्न भुवने यत्रोन वा जीवने ।

चित्तं त्वद्विरहेण हन्त हरिणी रूपायते सर्वदा,

मेहम्योऽपि यमायते विरचय च्छाद् लविक्रीडितम् ॥६४॥

भावार्थ—इस समय मुझ को फूल के प्रति स्नेह, संसार में सुख, कमल में प्रेम, पवन में प्रीति, रस में राग, और जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करना भी, अच्छा मालूम नहीं होता है । आपके विरह से यह चित्त, हिरणी के समान आचरण कर रहा है । और वह घर सिंह के रूप को धारण करता हुआ यम के समान आचरण कर रहा है ॥६४॥

शश्वन्मायां करोति स्थिरमति न मनो मन्यते नोपकारं

या द्राक्ष्यं वक्तव्यसत्यं मलिनयति कुलं कीर्तिवल्ली लुनाति

सर्वारम्भैकतेतुर्विभक्तिमुत्तरनिश्वंसिनी निन्दनीया

तां धर्मागमभङ्गिणीं मूर्खतिनीं मनुजोमानिनीं मान्यवृद्धिः

भावार्थ—तब श्री स्वयंभुव जी कहने लगे, कि स्त्री सदैव उत्पन्न-  
 भ्रष्ट करती है। मूर्ख-मूर्खों को जाल फैलाती है। मनु को मनुज  
 माना डालती है। और फिर यह असत्य-भाषिणी, हानाकारिणी,  
 मोक्ष-सुख-भङ्गक, कृतज्ञ-निन्दनीय कीर्ति रूपी लता को काटने  
 वाली, परिग्रह की मूल नष्ट, तभी धर्म रूपी उद्यान को नष्ट-भ्रष्ट  
 करने वाली है। अतः समस्तगुरु व्यक्ति, स्त्री को कदापि धारण  
 नहीं करने है ॥६५॥

सेवां या मन्त्रियते सुखमुपैचनुते प्रीतिमाविष्करोति,

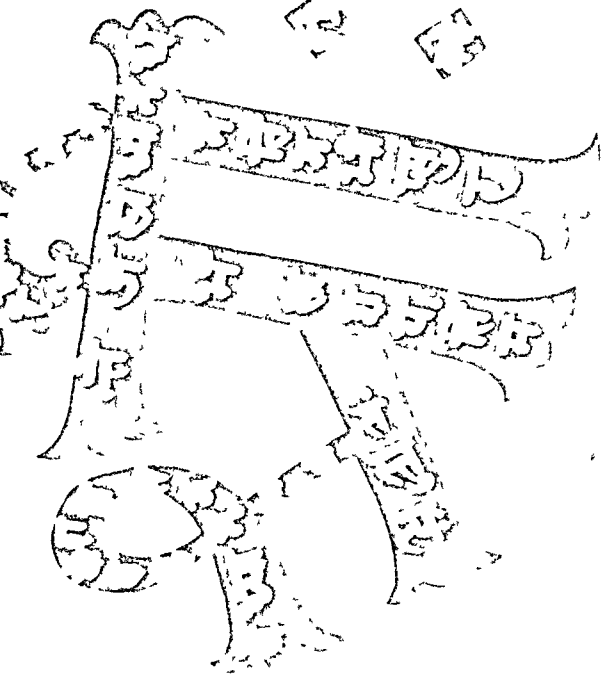
पत्पात्राहारदानप्रभवैरवृत्त्यास्तदोपभ्य हेतुः ।

वंशाभ्युद्धारकतु मेवति तत्सुखकारिण्येकान्तकीर्ति-  
 तत्त्वर्वाभीष्टदानं प्रवेदत कथं प्रार्थ्यते त्वीसु रत्नम् ॥

भावार्थ—तब उनकी स्त्री उन से कहने लगी, कि प्राणनाथ !  
 स्त्री, सेवा-धर्म-विजानि वाली सुख, का मचय करने वाली, प्रीति को  
 प्रकट करने वाली तथा सत्त्व-मुनि आदि को आहार-दान द्वारा  
 उत्पन्न पुण्य को करिण होती है। और मन्तानोत्पत्ति द्वारा वंश-  
 अभिवृद्धि का-कारिणी होती है। स्त्री पति के लिये कीर्ति स्वरूप  
 अतः हे तांथ आप इस प्रकार के सब सम्पूर्ण अभीष्ट को निन्द  
 करने वाले स्त्री-रक्षकों को क्यों नहीं चाहते हैं ॥६६॥

॥६६॥

全 國















हुए गुरु की सेवा करनेवाले और काम-सेवन के लिए विकल न रहने वाले व्यक्ति का गार्हस्थ्य जीवन ही अत्यन्त सुख का देने वाला है ॥१००॥

भवन्तः सद्योगप्रणिहितधियामत्रगुरवो,

विदग्धालापानामहमपि पदाब्जाप्तशरणा ।

यथाप्येतत्स्वामिन्नहि परहितात्पुण्यमधिकम्,

तवास्मिन्संसारे कुशलपट्टराः सौख्यमधिकम् ॥१०१॥

भावार्थ—हे स्वामिन् ! यद्यपि आर आत्म-ध्यान में लीन सद्गुरुओं के चरण-कमल की सेवा करते हुए उनके दिव्य उपदेश की प्राप्ति द्वारा नड़े भारों पुण्य का संवय कर रहे हो । और इस संसार में परोपकार से बढ़कर अन्य कोई पुण्य नहीं है । यह बात विलकुल सत्य है । किन्तु संसार में जिनसे जो सुख प्राप्त होता है उससे अधिक सुख भी कोई नहीं हो सकता है ॥१०१॥

त्वगस्थिरुधिरामिषैः प्रचुरगूथमूत्रादिकैः,

भृतां जगति वेदितां सकलदोषसीमां स्त्रियम् ।

अनङ्गशरजर्जरीकृतकलेवरे कातरो-

नरो जडमतिर्गुह्यःप्रियनमेति संभाषते ॥१०२॥

भावार्थ—जब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्र जी ने कहा, कि छिः ! छिः ! चमड़ी, हड्डी, रुधिर, मांस, विष्ठा और मूत्रादि से भरी हुई सकल दोष की खान छी को काम स्वरूप वाण से





दैराग्य के पूर्ण भाव जागृत हो गये । वे संसार की असारता की तरफ दृष्टिपात करते हुए तनिक विचार कर कहने लगे, कि पूर्वोपार्जित कर्मों के वश प्राणी संसार में भ्रमण करना हुआ अनेक प्रकार के मल से परिपूर्ण, कृमि-कुल से व्याप्त, नाना भौतिकी व्याधियों के मंदिर, व्यसन-ग्रस्त, स्त्री के गर्भ में निवास करता है । और अनेक दुःखों को प्राप्त करता है ॥ १०४ ॥

सासारिक प्राणी सरागी अर्थात् मोह के वशीभूत होकर, संसार में भ्रमण करता हुआ, भव-संतति के कारण दुःखों का उपार्जन करता है । और प्रचुर सुख की इच्छा करता हुआ, दुःखों से पूर्ण अनेक दोषों के भवन शरीर को धारण करके संसार में भ्रमण करता फिरता है । विचारने की बात है, कि प्रारम्भ में ही माता के गर्भ में इसको क्या सुख मिला ? बाल्यावस्था में गर्भ में केवल अपवित्र मलादि भक्षण किया । और काम-व्यसन-पीडित युवावस्था में इसे क्या हर्ष प्राप्त हुआ ? फिर इसी प्रकार अज्ञो को शिक्षित करने वाली वृद्धावस्था में कष्ट के सिवाय और क्या सुख मिला ? ॥ १०५-१०६ ॥ इस रस-हीन संसार में, स्त्री भोग-विलासों में, अन्य-जन के संगम में, क्षण-स्थायी धन के संचय एवं विनाश में, और विनाशशील पुत्र-पौत्रादिक संतति के दर्शन में, ऐसा कौन सा सुख है ? कि जिसके कारण मूर्ख व्यक्ति माया-जाल में पँस वर बंध जाता है । यह स्व-जन, पारजन, पुत्र, माता और स्त्री मय विचित्र इन्द्रजाल, संसार में न जाने किसने बना दिया है । वास्तव







सुख का प्राप्त करने वाला है। अतः इस व्याकुलता से मुक्ति  
रहने के लिए मैंने ऐसे साधुओं की शरण ग्रहण की है, कि जो  
प्रेम पूर्वक सामारिक जन्म-मृत्यु की पीड़ा को नष्ट करने वाले  
हैं ॥११३॥

सुखीं लावण्ययुतां पुरुषो ह्यप्यति यथा मुदा दृष्ट्या ।  
एवं हृदि निवमन्नं ध्यात्वा जिननिह भवेद्बुधो मुद्रितः

भावार्थ—जिन प्रकार लावण्यवती स्त्रियों को देख कर नरका  
सुख प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अपने मुद्रित हृदय द्वारा ध्यानस्थ  
होकर श्री जिनेश्वर भगवान् के बालादिक स्वल्प के दर्शन करने  
हुए विद्वान् सुख प्रसन्न होते हैं ॥११४॥

वायुना चाल्यमानस्य स्पर्शं दीपस्य दुर्लभम् ।

एवं वैराग्यहीनस्य दृढभक्तिरपोहिता ॥११५॥

न वैराग्याद्विना बुक्तिर्भक्तियोगः कदाचन ।

विषयैश्च भिन्नास्य गतः स्थिरता कथम् ॥११६॥

भावार्थ—जिन प्रकार पवन के प्रवाह प्रवेश से चलायमान  
, घुलने वाला। दीपक स्थिर होता दुर्लभ है। उसी प्रकार  
वैराग्यहीन व्यक्ति को ज्ञान से भक्ति भाव की सहायता का संचार  
केवल भी दुर्लभ है ॥११५॥ वैराग्य के अभाव में भक्ति ध्यान,  
जप और नित्य आदि कृत भी प्राप्त नहीं होता है। रात-दिन  
व्यसन-व्यासनाओं से अलग करनेवाले व्यक्तियों के मनकी स्थिति  
बला-व्यसन से मिली भी प्रकार नहीं हो सकती है ॥११६॥

यावत्मा प्रियभाषिणी स्मितमुखी मर्तु प्रमोदप्रदा,  
 यावन्नो प्रमते कगचवदना कग जग गच्छमी ।  
 मौभाग्यानुगुणं मदा गतभयं पीयूषपूर्णं परं,  
 कर्तव्यं जिनदेवताममुदितं मोक्षाय पूर्णं तपः ॥११२॥  
 मृत्युव्याघ्रभयङ्कराननगतं भीतं जग व्याघ्रत-  
 स्तीव्रव्याधिदुरन्तदुःखतरुमन्मंसागकान्तारगम् ।

देहं मे शृणु सुन्दरि ! व्यमनजं पातुं नितान्तातुरम्,  
 प्रेम्णाहं चरिताऽस्मि साधुशरणं मंगरजन्मार्तिहम् ॥॥

भावार्थ--यदि चंचल नेत्र वाली स्त्रियाँ वृद्धा न हो राजाओं की सम्पत्ति भी विजली के समान जलभंगुर न हो, तथा वायु की प्रचल लहर के समान यह जीवन चञ्चल न हो, तो फिर किसी भी प्राणी के लिए इन सामाजिक सुखों से विमुख हो कर जिनदेव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के पालन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है । जब तक भयंकर मुखवाली क्रूर वृद्धावस्था रूपी राक्षसी मनुष्य को ग्रसित नहीं करती, तब तक श्रेष्ठ पुण्यो के कर्तव्य है, कि वे जिनदेव भगवान द्वारा प्रतिपादित पुण्योदय के सूचक, भय-भय-संहारक, पीयूष-वारा के समान सरस सुखप्रद तप-त्याग-विधान की आराधना द्वारा मोक्ष-धाम को प्राप्त करें ॥१११-११२॥ हे सुन्दरी ! तीव्र व्याधि और दुःख रूपी वृद्धों से आच्छादित इस संसार रूपी वन में भटकता हुआ यह मेरा शरीर वृद्धावस्था रूपी व्याध से भयभीत हो रहा है । और मृत्यु रूपी सिंह के



रज्यद्विम्बाधरश्रीपिशितमवलितं गेमगर्जावमृत्रम्,  
 भ्रुवन्लिलेपकालायसवडिशमिदं तन्कटाचोपकर्णम् ।  
 अस्यां संसारनद्यां धिमगनिक्रुतुको निर्दयोऽयं कृतान्त-  
 स्तद्ग्रासोल्लासधारां परिहरत परं भ्रातगेलोकमीनाः ॥  
 नाहं कस्यापि कश्चिन्न च मम ममता नाशमूलं किलैत-  
 न्नित्यं चित्ते ध्रियध्वं यदि जगदखिलं नाममिथ्येति वुद्धिः।  
 एतस्याहं समैतद्यदि मनमि तदा जन्मकर्माद्रियध्वम्,  
 मन्यध्वं गर्भचर्मा वृत्तिमभयपदं किन्तु पुण्यं कुरुध्वम् ॥

भावार्थ—इस संसार रूपी नदी में, यह मृत्यु रूपी निर्दयी  
 धीवर, स्त्री के मांस संयुक्त रक्तवर्ण वाले अधर स्वरूपी फल को,  
 भृङ्गाटियों के कटाक्ष रूपी काँटों से संयुक्त, रोनावली रूपी भयंकर  
 कन्दकाकीर्ण जाल में डाल कर इन प्राणी रूपी मडली को प्रलो-  
 भन में डालता है। और जब यह प्राणी रूपी मडली उस जाल  
 में फँस जाती है। तब मृत्यु रूपी धीवर उसे पकड़ कर काल का  
 ग्रास बना लेता है ॥११७॥ इस संसार में न तो मैं ही किसी का  
 हो सका हूँ, और न मेरा ही कोई हो सका है। वह चित्त में  
 धारण की हुई मोह और ममता ही मेरा और तेरा भाव उत्पन्न  
 कराती है। इस भयङ्कर जन्म-मरण के दुःख को देनेवाले एवं  
 संसार में जीव को भ्रमण करानेवाले मोह को छोड़ कर जन्म  
 और मरण के भय से रहित कर्म का विनाश करके आनन्द-पूर्ण  
 चिन्मय मुक्ति की प्राप्ति का उपाय करना ही श्रेयस्कर है ॥११८॥

पितृभ्रातृसपिण्डवान्धवगणप्रौढप्रभावाग्रणीः-

प्रारावद्द्रुतमिष्टयोगनिष्ठः प्रायात्पुरे व्यावरे ।

श्रीसिद्धार्थनरेशवंशसरसीजन्माब्जिर्नावल्लभ-

ध्यानेनानयत्स्वकीयसमयं मुक्तिश्रियं वेदिनम् ॥११२॥

किं लोलाक्षिकटाक्षलम्पटतया किं स्तम्भजम्भादिभिः-

किं प्रत्यङ्गनिदर्शनोत्सुकतया किं प्रोलसञ्चाटुभिः ।

आत्मानं प्रतिबाधसे त्वमधुना व्यर्थं मदर्थं यतः-

शुद्धध्यानमहारसायनरसे लीनं मदीयं मनः ॥१२०॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक प्रौढ प्रभावशाली श्रीमदचन्द्र-  
जी अपने पिता भाई आदि सम्बन्धी-जनों के सम्बन्ध-जनक  
वक्त्यों को सुन कर भी अपने स्वल्प पर हठ रहे । जौन के अर्थों  
से शीघ्र ही व्यावर चल गये । वहाँ पर वे वीर प्रभु के ध्यान में  
अपने समय को व्यतीत करने लगे । यों श्रीमहार्जन प्रभु के  
ध्यान में निमग्न होकर वे अत्र तृप्ता के प्रति कहने लगे कि हे  
तृप्ते ! तू अल्प नेत्र-जडाज वाली हाव-भार करनेवाली, हास्य  
करनेवाली स्त्री के छटोपाड़ादि के दर्शन की उत्सुकता से  
मेरे मन और आत्मा को क्यों जाल में फँसाना चाहती है । मैं  
जब तेरे जाल में फँसनेवाला नहीं हूँ । क्योंकि जब मेरा मन  
कहीं • भर प्रभु के चरित्ररूपी कमलों में रुचकार कर रहा  
है ॥११६-१२०॥

सज्जानकूलशाली दर्शनशास्त्रज्ञ येन वृत्तवतः ।

अज्ञाजलेन नित्तोमुक्तिफलं तस्य दधानाह ॥१२१॥

भावार्थ—मद्विज्ञान रूपी जड से सयुक्त, मद्वृद्धि रूपी शाखा वाले, मच्चरित्र रूपी कल्प-वृक्ष को, जो पुनप श्रद्धा रूपी जल से सिंचित करते हैं। वे पुनप उम कल्प-वृक्ष द्वारा मुक्ति रूपी फल को अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥१२१॥

यद्गार्हस्थ्यकुलोचितं सुव्रतनं हित्वा स्थितिं स्थानके,  
कृत्वाहृत्पदचिन्ननं मुनिजनं ध्यात्वा विदित्वागमम् ।

न ज्ञानामृतमन्थनेन हृदयाम्भोधिद्वोमध्यते,  
यावत्तावदीयं न मुक्तिरमणी केनाप्यहो लभ्यते ॥१२२॥

स्वाध्यायोत्तमगीतिसङ्गतिजुषः सन्तोषपुष्पान्विताः-

सम्यग्ज्ञानविलासमण्डपगताः सद्ध्यानशय्याश्रिताः ।

तत्त्वार्थप्रतिबोधदीपकलिकाः चान्त्यङ्गनासङ्गिनो,

निर्वाणैकसुखाभिलाषिमनसो धन्या नयन्ते निशाम् ॥

ये जल्पन्ति व्यसनप्रिमुखां भारतीमस्तदोषाम्,

ये श्रीनीतिघुतिमतिधृतिप्रीतिशान्तीर्ददन्ते ।

येभ्यः कीर्तिर्विलितमला जायते जन्मभाजाम्

शश्वत्सन्तः कलिलहतये ते नरेणात्र सेव्याः ॥१२४॥

भावार्थ—अब श्री खूबचन्द्रजा, अपने गार्हस्थ्य-जीवन-सम्बन्धी बहो को परित्याग करके साधु-वस्त्र धारण कर पौषध-शाला में रहने लगे। वहाँ प्रतिदिन वे जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों में भक्ति-पूर्वक ध्यान लगाए रहते। और निर्ग्रन्थ-मुनि जनो की वन्दना तथा सेवा-सुश्रूषा करते हुए निरन्तर इस बात का

चिन्तन करने रहने, कि जब तक मैं ज्ञान नहीं रहूँ ( विलौघनी )  
 द्वारा हृदय रूपी समुद्र का मन्थन भली प्रकार से नहीं करूँगा तब  
 तब सुख की रुचि की प्राप्ति नहीं हो सकेगी ॥१२॥ और जो  
 पुण्य व्याख्याय रूपी उत्तम गान से प्रसुद्धित है, मन्तोप रूपी पुष्पो  
 से पूजित है, मन्थकू ज्ञान रूपी मण्डप में विलान करनेवाले है ।  
 मद्भयान रूपी शय्या पर स्थित होकर तन्वज्ञान रूपी वीर्य के  
 प्रयाग द्वारा माति रूपी सुन्दर-पथ पर चलने वाले हैं। तथा निर्वाण  
 रूपी सुष्म सुख की अभिलाषा में ही लीन हो कर, अपनी  
 गति को आनन्द से व्यतीत करते हैं। वे पुन्य वात्सव में साथ  
 पुण्य हैं। और अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं। अतः हे जीव  
 अदृष्टे भी ऐसे ही मन्त पुष्पो की सेवा में लीन हो  
 पाति, कि जो वष्टनाथ पवित्र जिनेक वाली का सेवन कर  
 है। तथा जो मन्थ गीति, मन्थ त्त, वाग्नि, मति ई त के  
 गान से प्रभावित है। तथा जिनेके प्रताप से प्रभावित है।  
 अतः हे जीव जो पुण्य से भाग्य है ॥१३॥

मन्थाराधनं गतिं सुखे नाम्नामान्धनिन्दे,  
 नो मातापुत्राणि नरुते तापदात परेषाम् ।  
 नो मातापुत्राणि विहिते नैति मन्थुं वजाभिः ।  
 देवताभिः ॥१३॥ मन्थाराधनं गतिं सुखे नाम्नामान्धनिन्दे,  
 नो मातापुत्राणि नरुते तापदात परेषाम् ।  
 नो मातापुत्राणि विहिते नैति मन्थुं वजाभिः ।  
 देवताभिः ॥१३॥







मातः पश्य निमृशतां मम हृदा नष्टं मया चैन्मृधा,

कामक्रोधद्वेषोभयमन्गरुधा माया महामोहनः ॥१३१॥

भाषार्थ—जब उनका माता ने उनके शुभागमन का सम्बन्ध  
सुना, तो वह पुनःप्रेम में विभार होकर वह माता-पिता उपाश्रय  
में उपस्थित हुई। और अपने पुत्र श्री गवचन्द्र जी से कहने लगी  
कि हे पुत्र ! तब हो चल। और गहा नाना प्रकार के वृत्तपूर्ण  
स्वादिष्ट मिष्टान्नादि का भोग करके कीर्ति पूर्वक लक्ष्मी का अर्जन  
करते हुए गार्हस्थ्य-वर्ग का पालन कर। तब हमारे चरित्रनायक  
श्री गवचन्द्रजी ने अपनी माता से विनय पूर्वक निवेदन किया, कि  
हे माता ! स्थानक (उपाश्रय) में निवास करनेवाले व्यक्तियों के लिए  
गृहस्थ के घर भोजन करना किम प्रकार उचित हो सकता है ?  
अब तो मैं वैराग्य वृत्ति में रहने के कारण मातु हूँ। अब अब  
आपके घर तो मैं केवल माधुओंके अनुकूल भिन्नान्न और गर्म जल  
आदि को लेने के लिए ही आ सकता हूँ। यदि माधु-वृत्ति को  
अंगीकार करके फिर भी पुरुष ने खाने-पीने की लोभुपता को  
नहीं छोड़ा और सिद्धान्त रूपी और्पाय से अपने हृदय को शुद्ध  
विशुद्ध नहीं किया तो उसका जन्म ही व्यर्थ है। अनादि अनन्त  
संसार में, मिथ्यात्व की रूगति के कारण, वह प्राणी, उन्माद रूपी  
भयंकर औधी के द्वारा गिरता-पड़ता हुआ, अत्युग्र भ्रम  
रूपी मुद्गर को असह्य चोटों से मूर्च्छित हो रहा  
है। अतः माया रूपी लोहे की मजदूत शृङ्खलाओं से बद्ध,



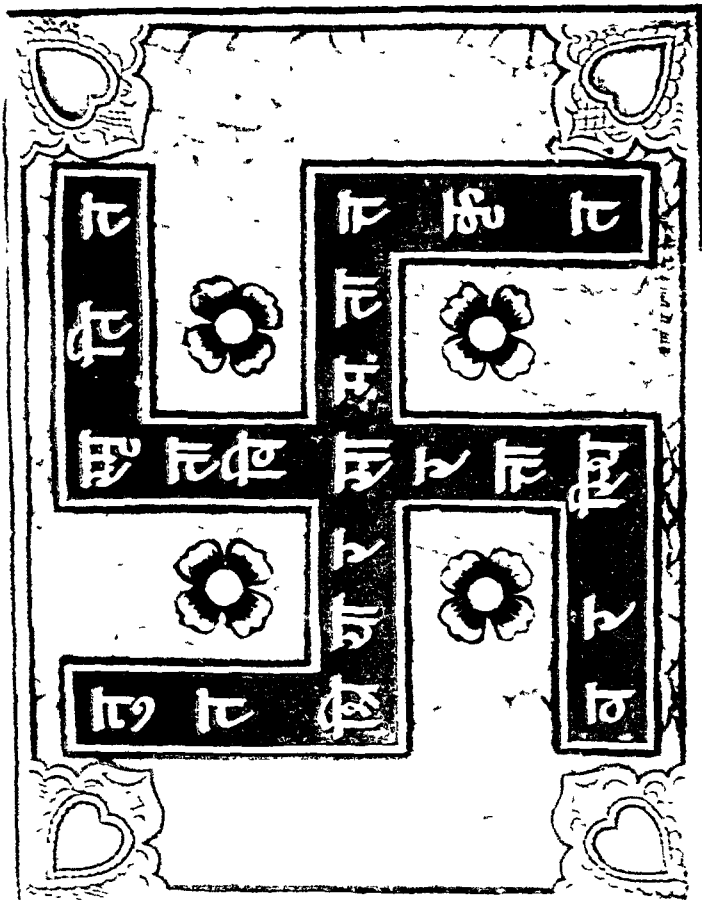
मानः पश्य दिशन्तः पश्यन्तः पश्यन्तः

कालक्रोधकुवोधमप्युत्तमं भावात्तन्मम

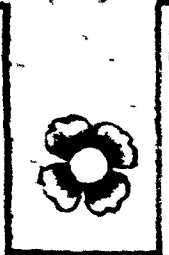
भावार्थ—

सुन, तो वह पुनः पुनः से मिलने लगता है।  
 मे तपस्थित हुई। और जो लोग जो मे से जुड़े लगे  
 कि हे पुत्र। वर जो मे से जुड़े लगे प्रलय के घृतपूर्ण  
 स्वादिष्ट सिद्धांतों से जो मे से जुड़े लगे प्रलय के घृतपूर्ण  
 वस्तु हुए गहरे से जो मे से जुड़े लगे प्रलय के घृतपूर्ण  
 श्रीशिवचन्द्रजा ने जो मे से जुड़े लगे प्रलय के घृतपूर्ण  
 हे माना। स्वतन्त्र होने के लिए जो मे से जुड़े लगे प्रलय के घृतपूर्ण  
 गृहस्थ के घर भोजन करने के प्रयत्न शक्ति हो सकता है ?  
 अब तो मैं वैराग्य श्रुति में रहने के कर्मगुरु हूँ। प्रत्येक  
 आपके घर तो मैं केवल साधुओं के अनेक कर्मों का और गन्ने जल  
 आदि को लेने के लिए ही बना सकता हूँ यदि मातृ-वृत्ति को  
 गीकार करके फिर भी लक्ष्मण खाने-पाने की लालुपता से  
 छोड़ा और सख्त रूपी आपाथ से अपने हृदय को शुद्ध  
 विशुद्ध नहीं करे तो उसका जन्म ही व्यर्थ है। अतः प्रत्येक  
 संसार में, मिथ्यात्व की उन्नति के कारण, वह प्राणी, जन्माद  
 मर आधी रात के द्वारा गिरता-पड़ता हुआ, प्रत्येक  
 मुद्रा को असह्य चोटों से मूढ़ित हो रहा  
 १. वृत्तः मोटा रूपी लोहे की मजदूर श्रमलियों से

श्रीशिवचन्द्रजा



九  
九



九 九 九  
九 九 九



九 九 九

九 九 九

九



九 九 九



九 九 九

九 九 九

九 九 九



प्रेरित हो पिता जी से कहा कि पिता जी ! जन्म-मरण और जरा आदि के दुःखों से क्या यह नारा संसार मुझे अत्यन्त भयानक प्रतीत हो रहा है। अतएव आप मुझ को इस अथाह संसार-सागर से पार लगा दीजिए। क्योंकि पिता अपनी सत्ता के लिए सदैव मुझ के नाथन एवमित्त कर देते हैं। मेरे दीक्षा ग्रहण करने से आपके वंश की कीर्ति होगी।

मातृभ्रातृकुटुम्बवर्गभगिनी तातन्वकीयाङ्गना,  
दीक्षाज्ञां परिलभ्य योगिनपुणोऽज्ञाशिष्टवासादिकान् ।  
पश्चान्नीमचमागमत्रित्वरं श्रीनन्दलालाभिधम्,  
दीक्षामर्जयितुं मूर्तिं सुमनसा नत्वा तथा प्रार्थयन् ॥१३६॥

भावार्थ—अब योग-निष्ठ श्री नृवचद्वर्जी ने अपने भाई, माता बहिन आदि कुटुम्बो वर्ग की आज्ञा प्राप्त कर के वहाँ से प्रस्थान किया। और नीमच पहुँच कर सर्व प्रथम वहाँ विराजित मुनिवर श्री नंदलालजी नहाराज के चरण-कमल में वन्दना करके दीक्षा-प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ॥१३६॥





ही स्वयं साधु-वेष पहन लिया है. अतएव अब मुझे अश्वारोहण की कोई आवश्यकता नहीं है। दनार्थी जी के इस वक्तव्य को सुन कर श्री संघ ने अनेक प्रकार के सुन्दर वाद्य और सुमधुर गीतों के द्वारा इस मङ्गलमय महोत्सव को सानंद सम्पादित किया ॥१३७॥ अब हमारे चरित्रनायकजी निर्ग्रथ दीक्षा से दीक्षित हुए। अर्थात् अब इन्होंने पाँच महाव्रत, पाँच-समिति और तीन गाम्भयो को धारण करते हुए मुनि-पद को स्वीकार किया। और अपने पूज्य गुरुदेव की सेवा में रह कर नित्यप्रति विनय-भक्ति पूर्वक पठन-पाठन में दत्तचित्त हुए। थोड़े ही दिनों में वे मुनि-पदोचित विविध गुणों से विभूषित हुए। तीव्र-तप-विधान के द्वारा अपनी छान्ना को विशुद्ध किया और अपने कुशाग्र बुद्धि वन द्वारा, शास्त्राध्ययन किया ॥१३८॥

वर्षे पञ्चाजुनन्दध्रुवपरिमितनष्टिक्रमाये नृतीया.

निश्चयामापादमासे शशधरदिवसे कृष्णपक्षे तथा च।

प्राज्यप्राद्वप्रमादप्रतिभगनिधनप्राप्तदीक्षाप्रतापः.

श्रोच्यैः शान्तिं प्रयाति प्रतिकलममलां प्राणिनां प्रेक्षमाणः

भावार्थ—इस प्रकार विक्रम संवत् १६५२ के आषाढ़ शुक्ला ३ सोमवार को हमारे चरित्रनायक श्री गुरुचंद्रजी ने दीक्षा ग्रहण की। और काम-मोक्षार्थे वपारों पर दिलचस्प प्राप्त करके अपनी छान्ना का सर्वोच्च गत्याग करने के लिए समुद्यत हुए ॥१३९॥

कस्यां चालपटं तनौ मितपटं कृत्वा शिरोलुञ्चनम्.

इस्ते पात्रमयोरजोहरकं निक्षिप्य कदान्तरे।

वद्ध्वा सम्मुखवस्त्रिकां शुचितरामाकाशगङ्गाममाम्  
 वैराग्याम्बुजिर्नाप्रबोधनपटुः प्रध्वस्तदोषाकरः ॥१४०॥  
 प्राग्भिष्टसुवेदितुं च विविधां वैकालमूत्रादिकम्,  
 ठाणाङ्गं समवांगमिष्टफलदं प्रार्थित्य तत्रान्तरे ।  
 सर्वार्हन्मतशास्त्रपारमगमच्छ्रीखूबचन्द्रो मुनिः,  
 जातौऽन्यागमदर्शनोत्सुकमना मुक्तिश्रियं वेदितम् ॥  
 चातुर्मासमनेष्टशुद्धचरितः श्रीनन्दलालं गुरुम्,  
 सद्भक्त्या परिसेव्य प्रोदयपुरे मेवाडदंशान्तरे ।  
 जैनस्थानकवासिशास्त्रनिपुणः सम्यग्दशा सद्गुणा,  
 लीलाभङ्गमहारिभिन्नमदनं तापाय हृद्या परम् ॥१४२॥

भावार्थ--उन्होंने अपने शरीर पर शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण  
 किये । मुँह पर मुख-वस्त्रिका बाँधी । कटि पर चोलपट्टा, हाथ में  
 पात्र और बगल में रजोहरण ग्रहण किया । अब वे अपने मुँह पर  
 बाँधी हुई आकाश-गङ्गा की शोभा को धारण करनेवाली स्वच्छ  
 श्वेत मुख-वस्त्रिका तथा केश-लुञ्जित मस्तक द्वारा, ऐसे सुशोभित  
 हो रहे थे, मानो वैराग्य रूपी सरोवर के कमल को प्रफुल्लित करने  
 वाले एक वैश्यायमान सूर्य हैं । उन्होंने क्रमशः दशवैकालिक आदि  
 जैन तत्त्व-प्रदर्शक शास्त्रों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन एवं नमन किया ।  
 यों काम-जन्त्रों पर विजय प्राप्त करने हुए अपने पुत्र्य गुणदेव  
 की सेवा में रह कर उन्होंने अपना प्रारम्भिक चातुर्मास उदयपुर  
 में व्यतीत किया ॥१४०-१४१-१४२॥

तत्परश्चान्मुनिसत्तमः समगमच्छ्रावचरोदस्थले,  
 देवीलालयर्ताश्वरेण सहसा व्याख्याद्वितीयादिके ।  
 मेवाडे पृथुसादडीं स्वगुण्या साद्ध समायात्तदा,  
 व्याख्यानानृतसिञ्चाद्गमनसा श्रोतृन्समासीपधन् ॥१४३॥  
 तुयेवं समगिश्रियद्गुणवरं सत्स्थानके नीमचे  
 र्नात्वा माणिक्यचन्द्रयोगनिपुरां श्रीमन्दत्तौरैजामन् ।  
 एवं पर्यटनेष्वयिष्टमुदतः श्रीजावरास्थाके.

विख्यातार्हद्वक्तिभाविनः सच्छ्रेणिकन्मापवन् ॥१४४॥

भावार्थ—आपने अपने द्वितीय चातुर्मास मंत्र १६५३ में  
 सुनि श्री देवीलालजी महाराज के साथ श्राव-  
 रोड में किया । और फिर तीसरा चातुर्मास मंत्र १६५४ में  
 आपने अपने सुनी के साथ रह कर बड़ी सादड़ी में किया । वहाँ  
 की जनता आपके व्याख्यानो से बड़ी ही प्रभावित हुई ॥१४३॥  
 चौथा चातुर्मास भी मंत्र १६५५ में आपने अपने सुनीके ही चरण  
 कमल में रह कर नीमच शहर में व्यतीत किया । तत्पश्चात् मंत्र  
 १६५६ में पौखवाँ चातुर्मास वरुडी सुनि श्री माणिक्यचन्द्रजी  
 को के साथ मन्दनौर में किया । आपके आत्म-ज्ञान गर्भित  
 उद्देशों से मन्दनौर की जनता का ध्यान अकम्पक्यत्कार के योग  
 प्रकीर्तित हुआ । इस प्रकार जनता को सन्मार्ग की ओर लाने  
 का उद्देश्य सन्मार्गित जाग्य नगर में हुआ ॥१४४॥



यो निर्गर्वो विधियति हितं गर्हते नापवादम्,  
मन्पुत्रागः सततसुखदः पुरयवान् भानि लोके ॥१४७॥

भावार्थ—जो मनुष्य श्रीमान् पन्नालाल जी के समान कृपा एवं करुणा पूर्ण हृदय से पर-हित-व्रत को धारण करते हैं। तथा जो हृदय-व्रत अभिमान, और पर-निंदा आदि पापों से रहित होकर धर्म-वृद्धि को ग्रहण करते हैं। वे पुरयवान् प्राणी वास्तव में पुन्य-शिरोमणि होकर लोक में शोभा के पात्र बनते हैं ॥१४७॥

हीरालालकविः कलानु निपुणोव्याख्यानदक्षःसुधीः.

शश्वद्योगपथानुगाः सहृदयाः श्रीखूबचन्द्रादयः ।

श्रुत्वा श्रीमृनिखूबचन्द्रशुभदं व्याख्यानमाजिज्ञपत्.

मिथ्येदं मुखलाल उच्चमनिभूः नंमारमायाजलम् ॥१४८॥

भावार्थ—सोभाग्य से एक बार उसी जीर्ण नामक ग्राम में कविवर मुनि श्री हीरालालजी स० एवं हमारे चरित्रनायक योग-निष्ठ धैर्यवान् मुनि श्री खूबचन्द्रजी स० आदि मुनियों का शुभाग-मन हुआ। चरित्रनायक मुनि श्री जी के ओजस्वी व्याख्यान को सुन कर के बालक मुखलालजी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। और उन्हें यह संसार मिथ्या भावित होने लगा ॥१४८॥

इमां प्रवृत्तिं मुखलालबालपितृस्वनाऽहृदनिजान्मजेन ।

श्रीकामवागोत्रजधमेधेता भवानिगमोऽन्नपयत्तनस्ताम् १४९॥

भावार्थ—बालक मुखलालजी को इन वैराग्य वृत्ति में उनकी भुजा ने अपने पुत्र दाग गेड़ा छटकाया। तथा :



उत्ते चादि भाषाश्रो जा तथा जैन मूर्त्तौ जा ज्ञान प्राप्त  
कर लिया ॥१५१-१५२॥

गुरुप्रभादोदकसिक्तवृद्धिलताकवित्त्वं फलमानविष्ट ।

यदीयमत्काव्यनुधाप्रवाहो देव्यागिगंलातिकला विलान्म

भावार्थ—गुरु की प्रसन्नता स्त्री जल-धागा से सिद्धित सुनि  
श्री सुमलाल जी महाराज की वृद्धि स्त्री लता से कविता स्त्री मन्  
उत्पन्न हुआ । इन कवितास्त्री फल श्री अनुसूतधारा का प्रवाह सि  
रेखा प्रवाहित होने लगा कि जो सरस्वती की शाली के दिन मन्  
प्रकाश कर रहा है ॥१५३॥

सुखयमनिधिभूमिदत्तरे जीर्णराग्रे,

नमनयतनुभावेः शुभ्रचातुः नमानम् ।

अनुष्मगुणराशिः शीलचाग्निभूषः-

प्रगदति जिनशाय्या सर्वशल्यारमृतम् ॥१५४॥

हरति जननदुःखं मुनिर्मानसं विधत्ते,

रुचयति शुभ्रवृत्ति पापवृत्ति धुलीति ।

प्रयति मन्मलजन्तुन कर्मगच्छितानि

प्रगमयति च नो यो उन्धर्मे ज्ञयति ॥१५५॥

भावार्थ—सर्वदुःखों का नाश करने वाले जिन शाय्या में  
सर्वदुःखों का नाश करने वाले जिन शाय्या में  
सर्वदुःखों का नाश करने वाले जिन शाय्या में



से जैन धर्म, जो कि जन्म-मरण के दुःखों का अन्त करने वाला और मुक्ति के अन्वय सुखों का प्रदाता है। और जो सद् बुद्धि प्रदायक पाप-बुद्धि प्रभंजक, सकल प्राणियों का रक्षक और कर्म शत्रुओं का विध्वंसक है। ऐसे परम पवित्र जैन धर्म का खूब ही प्रचलन प्रचार हुआ। और जनता के हृदयों में अनेकानेक शुभ भावनाओं की जागृति हुई ॥१५४-१५५॥

ग्रहशिवमुखनन्दचमापुरीमुज्जयन्तीम्,  
समगमदुपदेशैः कर्मनिर्मूलनाय ।  
वदति वचनमुच्चैर्दुःश्रवं कर्कशादि-  
कलुषविदलतायां तां क्षमां श्लाघते सः ॥१५६॥

भावार्थ—आपने संवत् १६५६ का चातुर्मास उज्जैन में किया। वहाँ पर आपने जगन्-जनता के कर्मों को निर्मूल करने के लिए, प्रतिदिन धारावाही सदुपदेश प्रदान किया। क्षमा की व्याख्या और प्रशंसा करते हुए आपने घोषित किया, कि दुःखदायी कठोर वचनों को सहन करना ही क्षमा है। क्षमा बड़ा ही परम पवित्र और प्रशंसनीय गुण है ॥१५६॥

पञ्चदिनोपवासैस्त्रैव मूलान् पुनश्च जाता ।  
शस्त्रं कृतपूर्वकर्मसामर्थ्येच्छेदे भवतीति भूमौ ॥

भावार्थ—इस चातुर्मास में आपने पाँच दिन का अनशन किया। जिसके प्रभाव से आपकी तिथी समूल नष्ट हो गई।

और फिर उत्पन्न होने का उसका साहस ही नहीं हुआ । तब आपने जनता को उपदेश दिया, कि इस समार मे पूर्व कृत कर्मों के छेदन-भेदन का एक मात्र असौव शस्त्र तप ही है ॥१४५॥

भगवन्मनिधिज्यानग्घटे माण्डलाख्ये,

प्रचुरमनुजनंख्याऽपिप्रियत्पञ्चरद्वीम् ।

अमृतमथनमिक्ता धर्मभावप्रसक्ता,

शपथमवृणुतामी प्रावितुं जीवहिनाम् ॥१४६॥

भावार्थ—आपने विक्रम सवत १६६० का चातुर्मास माघ-  
तक नरहारी मे समाप्त किया । वहाँ पर अधर्मियों के प्रचुर सं-  
घर होने हुए भी तपस्या की चार पञ्चगव्यों द्वारा । तथा आपने  
प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित होकर शपथों पर वैतन उत्पन्न  
ने मान-भक्षण का परित्याग किया और जीवित प्राणियों को मार-  
ने करने की नर प्रतिज्ञा धारण की ॥१४६॥

किमित्प पन्ममोऽयं निरुपहारं यजेत्त,

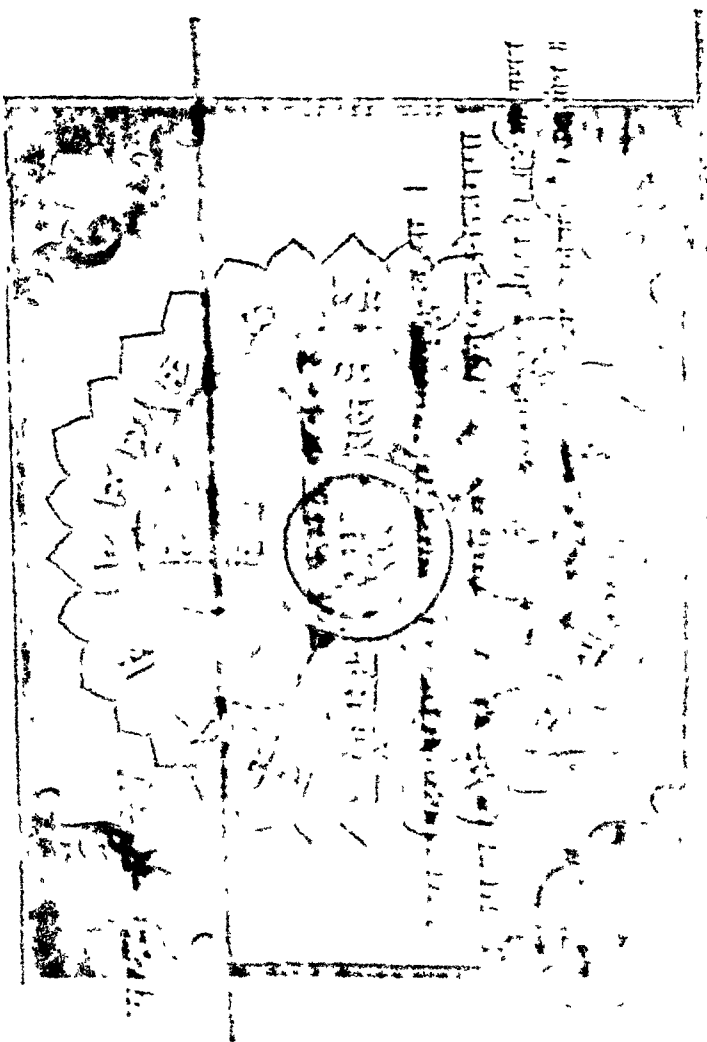
दिग्भ्यः परमदुःखं सप्तदशं यजेत्त

एति सन्तानं विशाखं यजन्तुः सप्तमे

दिवादि निदिग्भ्यः सप्तमे सप्तमे सप्तमे ॥१४७॥

भावार्थ—सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे  
सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे  
सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे सप्तमे



















विद्वद्बृन्दमनः सरोजमकरोद्वाक्यामृतैः फुल्लितम् ।  
 श्रीमत्स्थानकवासिधर्मतिलकोवादीभपञ्चाननः,  
 प्रारफूर्जज्जिनचारुधर्मविजयश्रीवैजयन्तीं तदा ॥२०५॥  
 मालव्यं शुभमेदपाटनिगमं पातुं मरालां ययौ,  
 बोधित्वा शुचिकाण्डसाजनपटं सौनां नवग्राहिकाम् ।  
 एवं ब्हादरपुःस्थितान् जिनगमान् सूक्तैः सुधाम्यन्दिभिः,  
 कामक्रोधमटादिकैश्च रहितः प्रायाद्यतीशाग्रणीः ॥२०६॥

भावार्थ—फिर मंवन १६६६ का चातुर्मास श्री स्व के  
 अत्याग्रह से आपने देहली में किया। वहाँ पर चरित्रनायकजी  
 निष्काम होते हुए भी मुक्ति कामनी के इच्छुक बने रहे। तथा  
 सत्यागेपित मन वाले होत हुए भी आपने अपने को सत्यावादी  
 की उपासे प्रमि करवा योग्य नहीं समझा। इसी प्रकार पूजनीय  
 होने हुए भी आपको अपनी स्तुति अप्रिय मालूम होती थी। यों  
 आप देहली में उत्तरोत्तर आधिकारि शोभा को प्राप्त होने  
 लगे ॥२०५॥ वहाँ पर आपने अपने मुखचन्द्र से वाक्य रूपी  
 चन्द्रिका को छिटका कर विद्वानों के हृदय रूपी कुमोदिनी को  
 विकसित किया। यों स्थानकवासी समाज के मनुटमणि,  
 चावर्दी रूपा हानियों के समूह में गरावन हाथों के समान मुनि  
 नृदचन्द्रजी महाराज ने जैन धर्म की ध्वजा को फहराया ॥२०५॥  
 प्रकार काम-क्रोधादि से रहित होकर आपने देहली का  
 स पूर्ण किया। और फिर वहाँ से महरौली, भाडमा, मोना,

विश्वविद्यालय का पत्रिका

संख्या १०१

विश्वविद्यालय का पत्रिका, अक्टूबर, १९५५

संख्या १०१, अक्टूबर, १९५५

विश्वविद्यालय का पत्रिका, अक्टूबर, १९५५

संख्या १०१, अक्टूबर, १९५५

विश्वविद्यालय का पत्रिका, अक्टूबर, १९५५

संख्या १०१, अक्टूबर, १९५५

विश्वविद्यालय का पत्रिका, अक्टूबर, १९५५

संख्या १०१, अक्टूबर, १९५५

विश्वविद्यालय का पत्रिका, अक्टूबर, १९५५

संख्या १०१, अक्टूबर, १९५५

विश्वविद्यालय का पत्रिका, अक्टूबर, १९५५

संख्या १०१, अक्टूबर, १९५५

विद्वद्बुन्दुमनः गणेशमयज्ञानाय नमः

~~श्रीमद्भगवद्गीतासु~~

प्रारंभेऽर्जुनस्य चर्चा

मालव्यं शुभसेदपात्तितं

वोदितः शुभसेदपात्तितं

एवं चार्जुनः शुभसेदपात्तितं

कामक्रोधादिभिः

। अर्जुनस्य चर्चा

अर्जुनस्य चर्चा

निष्काम-होते

सत्यारोपितं मनः

होते लक्षणम्

आर्जुनस्य चर्चा

लक्षणे

चर्चा

विकसित किया ।

चर्चायादी रूपी हस्तियों के समूह में परावत हाथी के समान गुण

श्री खुवचन्द्रजी महाराज ने जैन धर्म की ध्वजा को फहराया ॥०१॥

प्रकार काम-क्रोधादि से रहित होकर आपसे देखली का

गुमास पूरा किया । और फिर वहाँ से महरौली, भाउसा, सोना,





जाँ तथा बहादुरपुर आदि गाँवों में जैन धर्म का प्रचार करने  
 : आने नालवा और मेवाड़ की तरफ विहार किया ॥२०६॥

अलवरपुरजैनं सम्प्रदायं स्वकीयम्.

जिनविभुमुखवाचाऽपिप्रयच्छोत्तृन्दम् ।

नकलजिनपतिभ्यः पावनेभ्योविनुत्य.

मुनिपतिरवितुं योऽक्रंस्तधर्मप्रभावम् ॥२०७

भावार्थ—विहार करते हुए आपका शुभागमन अलवर नगर  
 आया। आपके पावन दर्शनों से अलवर के जैन-नमाज के  
 बड़े-बड़े नर-नारियों का हृदय-सागर आनन्द की तरंगों से  
 लहर पड़ा। वहाँ से फिर आपने अपने परम पृथ्वी तोर्यकरों को  
 अपने धर्म-प्रभावना के लिए आगे को प्रस्थान किया ॥२०७॥

योगिन्युजैनधर्मनितरान् संतुप्यहर्षान्वितः.

गार्धराजयपूःस्थले सममिलचत्र स्थितं योगिनम् ।

संज्ञप्रणयेन शुभ्रविनयाचार्य सुचन्द्रान्वितम्.

न प्रहवभूपणश्च शिवजीरामञ्च संवेगिनम् ॥२०८॥

भावार्थ—हृदय देश-निवासी जैन धर्मावलम्बियों को स्तुति।  
 उनके द्वारा अपने जयपुर की भूमि को पावन किया। इन समय  
 पर भी नर-नारियाँ श्री विनयचन्द्रजी न०। वराजमान से  
 आने उनके दर्शन किये। वे भी चरित्रनयन से निर-  
 प्रयत्न प्रसन्न हुए इसी प्रकार जैन श्रुताकर नर-नारियों के  
 दर्शन से भी पावनजीरामजी भी उन समय बड़ी पर-  
 प्रसन्न हुए वे भी आप से मिल कर परम प्रसन्न हुए ॥२०८॥













---

मालवा और मेवाड़ में धर्म-प्रचार

---

ततोऽयं योगीन्द्रः किशनगढ़मायात्मपदि तत्,  
स्थलात्सङ्घस्नेहैरजयमरुमैद्धर्मनिवहः ।  
स्मरक्रोधाद्वारीन् दलय कलय प्राणिषु दयाम्,  
तदादेच्यत्सङ्घं भयहरजिनेन्द्रोक्तवचनैः ॥२०६॥  
नमीरावादात्सः विजयगरे शास्त्रनिपुणः,  
ममायाद्यत्रासन् मुनिवरयुताः पण्डितवराः ।  
चुधाः देवीलालाः वृषजिनवृषादेशनपराः,  
तदा तत्त्वं जैनं जिनमतगतांश्चेतरजनान् ॥२१०॥  
दिशन्नेकं मामं स्थितिमकृतरम्यां मुनिवरो-  
पिणायं तस्माच्च प्रमुदितमना धर्ममवृधन् ।

क्रमाज्जैनक्षेत्रे सततमुपदेशामृतजलैः

समारुहद्धर्मक्षितिरुहमुदग्रं फलयुतम् ॥२११॥

भावार्थ—जयपुर से किशनगढ़ होते हुए, आपने अजमेर श्री स्तंभ के आग्रह से प्रेरित होकर, अजर-अमर-पुरी अजमेर की भूमि को पावन किया। वहाँ पर आपने जन्म-मृत्यु के भय को निवारण करने वाली श्री जिनेन्द्रवाणो के अनुसार काम-क्रोधादि रिषुओं पर विजय प्राप्त करके प्राणी मात्र पर दया करने का उपदेश दिया ॥२०६॥ वहाँ से नसीरागढ़ होते हुए विजयनगर प्यारे। वहाँ पर पण्डित-रत्न मुनि श्री देवीलाल जी म० अपने शिष्य-मण्डल सहित विराजमान थे। आपने भी वहाँ एक मास ठहर कर जैन तथा जनेतरीं का अपने व्याख्यान-मृत से वृत्त किये। फिर वहाँ से भिणाय प्यारे। ओर वहाँ की जनता को उपदेश प्रदान किया। यों जिन धर्म-क्षेत्र में जिन धर्म रूरी कन्वयुक्त को उपदेश स्वी जल द्वारा सिंचित करके उसे फल से परिपूर्ण बनाया ॥२१०-२११॥

पश्चाद्वांधनवाडाञ्च रूपाहेलीञ्च लाम्बिकाम् ।

माण्डलां भीलवाडाञ्च समार्पीद्धर्मबोधकः ॥२१२॥

श्रुत्वा ज्वाहरलालस्य नन्दलालादिभिः नह ।

स्थितिं निम्बडाग्रामेऽयात्तदा गुहर्माक्षितुम् ॥२१३॥

भावार्थ—भिणाय से बिहार करके आपने क्रमशः चान्दनवाडा

रूपाहेली, लाम्बिया, माँडल और भीलवाड़ा नामक क्षेत्रों को पावन किया ॥२१२॥ वहाँ आपको यह हर्ष समाचार प्राप्त हुए, कि “ पूज्य श्री जवाहिरलाल जी ए.०, स्थविर-पद-विभूषित, शास्त्र-विशारद, पूज्य गुरुदेव मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज आदि मुनिवरों सहित निम्वाहेड़ा में विराजमान है ।” इस शुभ समाचार को पाकर आप अपने पाँच शिष्यों सहित उनके दर्शनार्थ निम्वा-हेड़ा की ओर पधारे ॥२१३॥

मुनीन्द्रसांसारिकपितृभक्त्या निम्वाहडासङ्गशुभाग्रहेण ।  
नभोश्चखण्डार्क्षितसंमितेऽद्भ्ये व्यातीच्चतुर्मासमुदग्रयोगी ।

भावार्थ—अपनी जन्म-भूमि निम्वाहेड़ा में पहुँच कर विक्रम सम्वत् १६७० का चातुर्मास आपने अपने सांसारिक पिता जी और श्री संघ के विशेष आग्रह से तथा गुरुजी की आज्ञा से प्रेरित हो कर, वहीं पर किया ॥२१४॥

चातुर्मासमवीभसज्जिनगिरा हित्वा च निम्वाहडाम्,  
पर्याटीद्विविधस्थलेषु समयाच्छ्रीमन्दसौरे पुरे ।  
तत्स्थाने मुनिसत्तमाः समभुवन् तत्त्वज्ञविद्याप्रभ,  
श्रीमज्जवाहरलालजित्सुचरितः कल्याणकण्डान्वुदः ॥२१५  
चञ्चच्छारदचन्द्रचारुवदन श्रेयोविनिर्यद्वचो,  
वादीन्द्रद्विपकेशरीशुचिमत्तिः श्रीनन्दलालोगुरुः ।  
एवं सत्कविताप्रसूनसुरभिप्रीतोमुनीन्द्रस्तथा,

हीरालालकवीधरः प्रणयधीवैराग्यरङ्गान्वितः ॥२१६॥  
 लणोज्ज्वलहरलालजीप्रवयसाऽस्थालीच तत्र स्थले,  
 एतश्रीमुनिनन्दलाल इति यः शिष्यैर्गणैर्जावराम् ।  
 कोटां तोयधिमासमर्चनविधौ श्रीखूबचन्द्रोमुनिः।

प्रायात्स्वीयगुरुर्निदेशवचनैर्ज्याऽगाङ्गभूवत्सरे ॥२१७॥

भावार्थ—आपने संवत् १६७० का चातुर्मास निन्वाहेडा में  
 व्यतीत करके गुरुवर्य श्री जवाहिरलालजी म० वादी-मान-मदक  
 विद्वान् पं० मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज, और कविता, कुलुम्भ  
 नौरभ द्वारा सुरभित कवि श्री हीरालालजी म० आदि मुनियों तथा  
 अपने शिष्यों सहित विहार करते हुए मन्दनौर में पदार्पण किया।  
 श्री जवाहिरलाल जी म० तो वृद्धावस्था के कारण मन्दनौर ही में  
 ठहर गये। किंतु मुनि श्री नन्दलालजी म० अपने शिष्यों सहित  
 जावरा पधारे। फिर कोटा नद्य के अन्याग्रह से तथा गुरुजी की  
 आज्ञा से प्रेरित होकर मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० संवत् १६७६ का  
 चातुर्मास करने के लिए कोटा पधारे ॥२१५-२१६-२१७॥

क्रोधादिरूपममितुं गुरुपादपङ्कः  
 जैनेतराः तुमनुजाः शुचिभक्तिभावैः ।  
 अस्तादिपुः समदनीत्कृपया मुनीन्द्रः,  
 दुर्बन्ति ये भुवि नृणां पतनं क्षुण्णधम् ॥२१८॥  
 दैर्यं धुनोति विधुनोति मतिं तपोन.





स्तयं तनोति भजते वनितां पश्य ।  
 गृह्णाति दुःखजननं धनमुग्रदोषं,  
 लोभग्रहस्य वशवर्तितया मनुष्यः ॥२२४॥  
 निःशेषलोकवनदाहविधौ नमर्थं,  
 लोभानलं निखिलतापकरं ज्वलन्तम् ।  
 जानाम्युदाहजनितेन विवेकजीवाः,  
 नन्नोपदिव्यमलिलेन शमं नयन्ते ॥२२५॥  
 यां छेदभेदमनाङ्कनदाहदोह-  
 वातातपान्नजलगेधवधादिदोषान्,  
 मायावशेनमनुजोजननिन्दनीयां,  
 नियन्गतिं प्रजतिं तामतिदुःखन्पान् ॥२२६॥  
 यत्र प्रियाप्रियवियोगममागमान्-  
 प्रोषयन्प्रान्पधनान्धर्तानतापैः ।  
 दुःखं प्रयाति त्रिदिशं मन्मापन्नतं,  
 तं मर्त्यदानमपितिष्ठति मापयती ॥२२७॥  
 योषादिमान् विष्टुमस्तान्मुग्धदोषमान्चै-  
 र्धर्मान्निर्गुणैरुपैः त्रिनिन्दितमनः ।  
 जन्तयेन नर्तयिष्यन् भावते नमः  
 वी.प्र.न.प.प. पदमालिनीति २२२

भावार्थ—क्रोधादि कण्यों के निवारणार्थ जैन तथा जैनेतर जनता ने, मुनि श्री ब्रह्मचन्द्रजी म० से उपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। तब मुनि श्री ने मनुष्यों को अधोगति में ले जाने वाले क्रोधादि कण्यों का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया ॥११॥ क्रोध धैर्य को नष्ट कर डालता है। जण-भर में बुद्धिको बिगाड़ देता है। अपने आपे को भुला देता है। शरीर को शिथिल कर देता है। धर्म को ध्वंस कर देता है। क्रोध में वाच्य और अवाच्य का विचार नहीं रहता। क्रोध एक प्रकार की मदिरा का मद है ॥२१॥ क्रोधी मनुष्य की भृकुटि सदैव चढ़ी रहती है। मुक्ताकृति भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है। नेत्र लाल-लाल हो जाते हैं। वह अपने प्रकम्पित शरीर द्वारा दाँत पीमता हुआ लोक-निन्दा का पात्र बनता है। इस प्रकार क्रोधी मनुष्य एक राजस के समान त्रासदायक मालूम पड़ने लगता है ॥२०॥ क्रोध, मैत्री-भावना को नष्ट-भष्ट करके वैर-भावना को उत्पन्न करने वाला तथा घृणित विचारों का प्रचारक है। क्रोध, मनुष्य को कष्ट में डाल कर उसके आस्तविक स्वरूप को विकृत कर डालता है। तथा कीर्ति को भी नष्ट कर डालता है। क्रोध के समान इस संसार में दूसरा कोई शत्रु नहीं है ॥२१॥ लोभ के वशीभूत होकर न की आशा से प्राणी भूमि को खोदते हैं। पर्वत की धानुओं को फूँकते हैं। राजाओं के आगे दौड़ते हैं। अनेक देशों की खाक को फिरते हैं। किंतु उन्हें पुण्य के बिना, कहीं पर भी सन्तोष

प्राप्त नहीं होता है ॥२२२॥ लोभी पुण्य के लक्षण यह हैं, कि वे व्याकुल जीव निन्दित वेप को धारण करके धनिक पुरुषों की सेवा में रहते हैं। और दीनता पूर्वक उनकी चामत्सी करते हैं, कि ह स्वामिन ! आप सद् बुद्धि को प्राप्त हों। आप विरजाल तक जीवित रहें और आनन्द का प्राप्त हों। इत्यादि ॥२२३॥ लोभ के आधीन होकर, यह प्राणी अनेक प्रकार के जीवों का धान करना है। असत्य-भाषण, चोर, और पर-छी-सेवन करता है। तथा प्राणनाशक दुःख के उत्पन्न करने वाले धन को ग्रहण करता है ॥२२४॥ विचारहीन पुण्य इन लोभ रूपा अग्नि जो जो एक सम्पूर्ण लोक रूपा वन को दग्ध करने में समर्थ है। तथा जो सद् को जला देने वाली है अपने ज्ञान रूपा वाक्ल द्वारा संतोष रूपा दिव्य जल की वर्षा से वृन्त है ॥२२५॥ नाया के आधीन होकर यह जीव छेदन भेदन अन्न गहन, वात, ध्रुव और अज्ञभाव आदि अनेक कष्टों को प्रदान करने वाली पशु गति को प्राप्त करना है ॥२२६॥ नाया के कारण मर्त्य लोक में भी प्रिय विदोग, अप्रिय-संदोग वृष्टा तथा धन-धान्य का अभाव आदि अनेक अमङ्गल दुःख प्राप्त होते हैं ॥२२७॥ जो मनुष्य गुरु दोष रूपा अत्र-भार्यों द्वारा मुन्-लित होकर धर्म रूमी रण-क्षेत्र में क्रोधादि गर्भुओं की पराजित करके शान रूपा मौका से संसार रूपा मनुष्य को पार करके ह। वे ही मनुष्य वीर प्रभु द्वारा भाषित पद्म पद् भेद को प्राप्त होते हैं ॥२२८॥

निपतितो वदते धर्मात्तन्ने, वमति सर्वजनेन विनिन्द्यते ।  
 शिशुभिर्वदनं परित्नुम्व्यते, वनयुगसुगतस्य विमृश्यते ॥  
 भवति मद्यद्वेषेन मनोभवः, मकलदोषकरोऽत्र शरीरिणः ।  
 भजति तेन विकारमनेकधा, गुणयुतेन मुग पगिन्यज्यते  
 पिबति यो मदिरा मयलोन्दुपः श्रयति दुर्गतिदुःखममोजनः  
 इति विचिन्त्य महामतयस्त्रिधा परिहृगन्ति मदा मदिरागमम्

भावार्थ—मदिरा पीने वाला मनुष्य, पृथ्वी पर गिर कर छंद-  
 संट बकवाद करता हुआ वमन करता है । अतः जगत्-जनता द्वारा  
 वह निंदा का पात्र होता है । कुत्ते उसके मुख को चाटते हैं । और  
 अपने अपवित्र मूत्र द्वारा उसको प्रजालित करते हैं ॥२२८॥  
 मदिरा-पान से कामदेव की उत्पत्ति होती है । और शरीर-धारियों  
 के लिए यह कामदेव सब प्रकार के दोषों की जड़ है । क्योंकि इन्हीं  
 से शरीर में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं । गुणवान्  
 मनुष्य, मदिरा-पान को त्याज्य समझते है ॥२३०॥ जो मनुष्य मद्य  
 पीते हैं, वे दुर्गति के महान् भयंकर दुखों के अधिकारी होते हैं ।  
 इसलिए विचारशील व्यक्ति मदिरा को कभी नहीं पीते हैं ॥२३१॥

मांसाशनार्जावधानुमोदस्तनो भवेत्पापमनन्तमुग्रम् ।

ततोव्रजेद् दुर्गतिमुग्रदोषां मन्वेति मांसं परिवर्जनीयम् ॥२३२॥

मांसाशिनो नास्तिद्वयासुभाजांद्रयां विनानाम्निजनम्य पुण्यम्

विना याति दुर्न्नदुःखं संमारकान्तारमलम्य पापम्

मांसाशने मोदति मांसभर्त्सा जानाति नो कर्मविचित्रभावम्  
 इश्याम्यहं प्राणिनमद्रमोदैः कालान्तरेऽशिष्यति जीवमांसः

भावाद्ये--जो जीव मांस-भक्षण करने में आनन्द मानते हैं।  
 वे ब्रह्म पाप सम्पादन करते हैं! और अन्त में तरक गति में  
 जाकर अन्त दुःखों को प्राप्त करते हैं। ऐसा समझ कर मांस का  
 भक्षण कभी नहीं करना चाहिए ॥२३॥ मांस-भक्षियों के हृदयों में  
 तन्त्रि भी व्या-भाव उत्पन्न नहीं होता है। और व्या के बिना  
 पुरुष की प्राप्ति नहीं होती। पुरुष के बिना वह जीव इस संसार  
 रूपी भीषण वन में भ्रमण करता हुआ भयानक दुःखों का शिकार  
 होता है। मांस-भर्त्सा जीव मांस-भक्षण के समय महान् आनन्द  
 मानता है। किन्तु कर्म की विचित्र गति को वह नहीं जानता है  
 कि आज मैं जिन को आनन्द पूर्वक भक्षण कर रहा हूँ।  
 कालान्तर में वही मुझ को भक्षण करेंगे। मांस शब्द  
 का व्युत्पत्त्यर्थ है मां 'अर्थात्' 'मुझ को' और न '।  
 अर्थात् 'वह'। तात्पर्य इसका यह है कि जिन प्राणी के मांस को  
 आज मैं खा रहा हूँ, कालान्तर में वही प्राणी मुझ को भी  
 खावेगा ॥२३॥

यानि कानिचिद्वनर्ध्वीचिके, जन्मनागरजले निमज्जतान् ।  
 सन्ति दुःखानिलयानि देहिनां, तानि चाद्यमरेण निम्बितान्  
 मन्दाशौचमशुभं वदन्ति, र्ध्वान् ननेऽहिकृताः ।

द्यूतदोषमतिनापि चेतनाः कं न दोषमुपचिन्वते जनाः ॥२३६॥  
साधुवन्धुपितृमातृसज्जनान्मन्यते न तनुते मलंकुले ।

द्यूतरोपितमनानिरस्तधीःशुभवासमुपयान्यमौ यतः ॥२३७॥

द्यूतनाशितसमस्त भूतिको, बम्भ्रमीति सकलां भुवंबरः ।

जीर्णवस्त्रकृतदेहमंहतिर्मस्तकाहितकरः क्षुधातुरः ॥२३८॥

याचते पटति याति दीनतां, लज्जते न कुरुते विडम्बनाम् ।

सेवते नमति याति दासतां, द्यूतसेवनपरोनरोऽधमः ॥२३९॥

शीलवृत्तगुणधर्मरक्षणं, स्वर्गमोक्षसुखदानपेशलम् ।

बुवताक्षरमणं न तत्त्वतः सेव्यते सकलदोषकारणम् ॥२४०॥

भावार्थ—अनर्थरूपी लहरो से व्याप्त, संसार-समुद्र के जल में डूबते हुए प्राणियों को जो भी दुःख प्राप्त होते हैं। वे सब जुआ खेलने से मिलने हैं। यह ध्रुव सत्य है ॥२३५॥ जुआरियों को सज्जन, बन्धु, माता, पिता, आदि किसी भी व्यक्ति को प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं रहता है। वे अपने उज्वल वंश पर कलंक का टीका चढ़ाते हैं। उनको सत्यता, पवित्रता, शान्ति और सुख प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। द्यूत-क्रीड़ा-जनित, दूषित बुद्धि के

५५ उनका धन, धर्म और बुद्धि विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार बुध-बिहीन होकर जुआरी लोग किस दोष को प्राप्त नहीं करते

१ अर्थात् सब ही प्रकार के दोष उनके हृदय में निवास कर हैं। और अन्त में वे बुद्धि रहित नरक गति का प्राप्त करके

दुःख भोगते रहते हैं ॥२३६-२३७॥ जुआरी लोग जुआ में अपनी नमत्त सम्पत्ति नष्ट करके संसार में दर-दर के भित्तारी होकर इधर-उधर नारे-नारे फिरते हैं । फिर वे बुभुक्षित फटे वस्त्र धारण करते हुए, सिर पर हाथ धर कर, रोते और पछनाने हैं ॥२३८॥ जुआरी पुरुष नीचवृत्ति द्वारा उदर-पूर्ति करते हैं । अर्थात् वे नीच व्यक्तियों की सेवा करते हैं, उनके हाथ जोड़ते हैं, उनके साथ-नाथ फिर कर उनसे भीख माँगते हैं । और यहाँ तक, कि वे दास-वृत्ति को भी धारण कर लेते हैं । इन प्रकार उनके हृदय से लज्जा पलायन हो जाती है । और वे भगवत् विद्वन्मना को धाम होते हैं ॥२३९॥ शील व्रत, गुण धर्म आदि जा कि धर्म और मोक्ष आदि अस्तरह सुख के देने वाले हैं । उनकी रक्षा के लिए पुण्य को सबल दोष के मूल कारण जुआ वा सदा सर्वदा के लिए परित्याग कर देना चाहिये ॥२४०॥

धृतेरेलः कौरवपाण्डवाश्च, परस्त्रिया गण्ड उग्रभावाः ।  
 मध्येन मर्दे पदुदंशजाताः पाताः त्रयं वंशन्पुत्र्य मानः ॥  
 गुरुपदेगामृतानित्तचित्ताः धृतेः सुगमाभिपभकरवच ॥  
 संतत्युदरेव तस्मात्पुत्रमप्यन्त्यजाः शालकनाम्निनाम् ॥ २४१ ॥

भावार्थ—एतदीनां च कौरव नामाणां च नृणां कृपा हीनत्वं  
 पाण्डव उदरे प्रसूयते । शालकनाम्निनाम् इति नीचवृत्तयः  
 यथा परस्त्रियान् उदरे उदरे प्रसूयन्ति तथा च कौरवाः इति  
 प्रसूयन्ति ॥ २४० ॥ एतन्नाम देवदत्त राजानः पुत्रवर्धनं कुरुते ॥





प्रागच्छीगुरुदर्शनाय तदपि स्वर्ग गुरुः प्रागमत्,  
षष्ठ्यां कार्तिकमासिके सिततिथौ शुक्रे च मध्याह्निके ॥२४४

भावार्थ—अजमेर चातुर्मास के लिए विहार करने समय, आपने अग्ने शिष्यभण्डल सहित स्वस्वशाय्या-शायी मुनि श्री गुलाबचन्द जी महाराज को औपयोजचार द्वारा स्वास्थ्य-लाभ प्रदान किया। उसी वर्ष चातुर्मास में मुनि श्री जवाहिरलालजी म. वा. स्वास्थ्य मन्दसौर में अत्यन्त खराब हो गया। अतः उन्होंने दीपनालिका के दिन संयारा (अनशन व्रत) धारण कर लिया। इस समाचार को पाकर, हमारे चरित्रनायक धैर्यवान् मुनि श्री खूद-चन्द्रजी म० ने, चातुर्मास में ही श्री स्थानाङ्ग सूत्र के पाँचवें स्थान के द्वितीय उद्देशानुसार, गुरुवर्य श्री जी के दरसनार्थ, मन्दसौर की तरफ प्रस्थान कर दिया। परन्तु गुरुवर्य श्री जवाहिरलालजीम. वा. देहावसान तो कार्तिक शुक्ल ६ शुक्रवार के दिन ही हो चुका था।

स्वर्गात्प्रामनमाचारं विजगुरोः श्रीभालवाडापुरे.

श्रुत्वोवाग्निनानि खेदमहिनः प्रायात्तु चितोडकम् ।

तस्माच्छ्रीयुतदेविलान्मुनिना कृत्वा विहरं पुनः,

नंप्राप्योदयकं पुरश्च मुनिना प्रायात्पुनः व्यावरम् ॥२४६

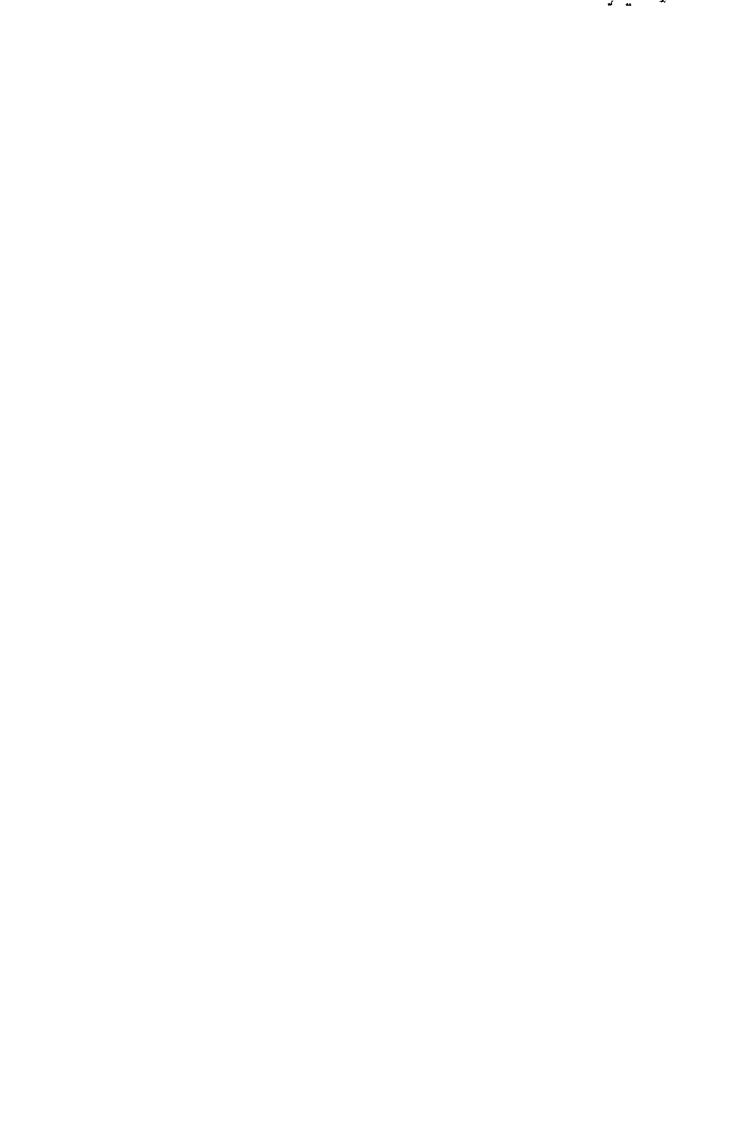
भावार्थ—गुरुवर्य श्री जी के स्वर्गवास के समाचार हमारे चरित्रनायक जी को मार्ग में प्रार्थान् भालवाडा में ही प्राप्त हो गये। तब आपने खेद पूर्वक प्रकट किया, कि इसमें मैं गुरुदेव की

अन्तिम सेवा भी सम्पादन नहीं कर सका । आप कुछ दिन भीलवाड़ा में ही ठहरे । और फिर कुछ ही दिनों के पश्चात् चित्तौड़गढ़ की तर्क विहार किया । फिर वहाँ से पंडित मुनि श्री देवीलालजी म० के साथ ही माथ उदयपुर नगर की भूम को पावन करते हुए, आपने व्यावर नगर में पदार्पण किया ॥२४६॥-

नेत्राश्वाङ्क महीमिते मुनिवगः श्रीनन्दलालादयः,  
 पुण्ये जोधपुरे तदा समभवन मत्तोत्तराविंशतिः ।  
 धन्वस्थोगुणघोटकाङ्ककुमिते वर्षादिनानाङ्कृते,  
 प्रार्थयै शुभसाढडीजनवहः श्रीनन्दलालं ययौ ॥२४७॥  
 वैहृद्यं विततं तदा समभवत् संस्थानकं वासिनाम्,  
 जैनानां जिनमन्दिरं सुमहतां येनावरोधः पथि ।  
 माधूनां गमनं तदा न सहमा कष्टं समीच्याजनि,  
 वैमवाद्युतेऽपि तत्र ममये श्रीखुवचन्द्रं मुनिम् ॥२४८॥  
 नेतुं मामचतुष्टयं गुरुवरः पिप्रेष शान्तेः निधिम,  
 त्यक्त्वा तं मुनिपं यतो नहिपरः माधुस्तदा सोऽभवत् ।  
 यद्वर्षा समयस्य निर्णयपरोदेशो न वाजायत,  
 मूध्न्यदिशमयं निधाय सुगुरोः मंशिश्चिये साढडीम् ॥२४९॥  
 व्याख्यान् जनशान्ति धायकभरं कृत्वा मुनिर्योगिराट्,  
 मुद्रां चेतसि गंददे रमजुपां शान्त्याः गुणानां नृणाम् ।









विनेयास्तं नेतुं परमपरमित्वा मुनिनृपम्,  
 परावृत्ता ज्ञात्वा परममपरं खूबशशिनम् ॥२५१॥  
 ततो यात्वा भाई कनकमलजीमाठवचनात्,  
 समानस्थुः स्थाने व्रतचरमुनिः शान्तिमहितः ।  
 ततः सत्यादानः कनकमलजी श्रेष्ठिसहितो-  
 गुल्लेष्टोचेवाक्यं मुनिषु महितं शान्तिसहितम् ॥२५२॥  
 ग्रहीत्वा कस्येयं गृहवमतिरादेशमधुना,  
 ग्रहीतेति पृष्टोः कथयति मुनिः शान्तिसहितः ।  
 समस्थाभागारे कनकमलजीमाठवचनात्,  
 ततस्तद्वाक्यं सः पुनरपि निशम्येति सुमुनेः ॥२५३॥  
 यथौ तूष्णीं भावं तदपि हृदये तरप गमनम्,  
 समाकाट्क्षन्प्रायात् कनकमलजीवावचनशः ।  
 पुनर्मध्याह्ने न कनकमलजी श्रेष्ठिपुदः  
 सुपद्मालालीयं मपदि नदनं प्राप मुनिपम् ॥२५४॥  
 तदायात्पूज्यश्रीदिनयशसिगच्छीयमुज्जो-  
 महात्मा तत्र श्रीदुधमणिमुनिरचन्दनमलः ।  
 तदादिष्टं तद्गदारयमुनिमहितस्दैवफलके,  
 मत्प्रेम्ना ज्ञातं हितकर्म धर्ममहितम् ॥२५५॥

भावार्थ—जब समय बदला ने कुछ ही क्षणकी मरगाड  
 की मरगाड के हुए हूँति दिख-जान के रूप ने दिखलाना के





यहाँ किस की आज्ञा से ठहरे हैं । तब शांतमूर्ति श्री खूबचंद्रजी म० ने उत्तर दिया, कि—‘हम श्री कनकमलजी की मातेश्वरीजी से आज्ञा प्राप्त करके यहाँ ठहरे हैं ।’ उस समय श्रीमान् सतीदानजी की यह इच्छा थी, कि इन को यहाँ से अभी हटा दिये जाँय । किन्तु कनकमलजी ने कहा, कि पारणा करके चले जाँयगे ! थोड़ी देर के पश्चात् कनकमलजी फिर वहाँ आये । और मन्वान्द के समय ने ही सेठ पन्नालालजी काँकरिया की हवेली में पधारने की प्रार्थना करने लगे । तब हमारे चरित्रनायकजी शांतिपूर्वक वहाँ पवार गये । वहाँ पर पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज के गच्छा-नुयायी, पंडित रत्न, श्री चन्दनमलजी महाराज पधारे । इस प्रकार मुनि श्री खूबचंद्रजी महाराज एवं पंडित रत्न श्री चन्दनमलजी महाराज इन दोनों मुनिवरों का व्याख्यान उस एक ही स्थान पर, प्रेन पूर्वक होता था ॥२५१-२५२-२५३-२५४-२५५॥

तत्र श्रीमुनिनन्दलालसहिनोहीरादिलालोमुनि-  
 विद्वच्छेखरदेविलालसुमतिः श्रीचौधमल्लस्त्रया ।  
 श्रीमन्तोमुनिराजकाः शुभपराः सप्तोचराविंशति,  
 तस्थुस्तत्रपरऽपिदेशनपरा लालान्तपन्नागृहे ॥२५६॥  
 व्याख्यानं महतां बभूव जनता सन्तोपदं मोददम्,  
 पुण्यं तत्त्वत्तु काकरीयसहनं पुण्यापरां प्राजनि ।  
 चुन्नीलालमुहुन्दर्जीसुमहितः पन्नादिलालो धर्मा,  
 सेनां श्रीमुनिवृन्दकस्य विद्वेषे श्रद्धाच्च भक्त्यायुतः



यहाँ किस की आज्ञा से ठहरे हैं । तब शांतमूर्ति श्री खूबचंद्रजी म० ने उत्तर दिया कि—“हम श्री कनकमलजी की मातेश्वरीजी से आज्ञा प्राप्त करके यहाँ ठहरे हैं ।” उस समय श्रीमान् सतीदानजी की यह इच्छा थी, कि इन को यहाँ से अभी हटा दिये जाय । किन्तु कनकमलजी ने कहा, कि पारणा करके चले जायगे ! थोड़ी देर के पश्चात् कनकमलजी फिर वहाँ आये । और मध्याह्न के समय मे ही सेठ पन्नालालजी काँकगिया की हवेली मे पधारने की प्रार्थना करने लगे । तब हमारे चरित्रनायकजी शांतपूर्वक वहाँ पधार गये । वहाँ पर पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज के गच्छानुयायी, पंडित रत्न, श्री चन्दनमलजी महाराज पधारे । इस प्रकार मुनि श्री खूबचंद्रजी महाराज एवं पंडित रत्न श्री चन्दनमलजी महाराज इन दोनों मुनिवरों का व्याख्यान उस एक ही स्थान पर, प्रेम पूर्वक होता था ॥२५१-२५२-२५३-२५४-२५५॥

तत्र श्रीमुनिनन्दलालसहितोहीरादिलालोमुनि-  
 विद्वच्छेखरदेविलालसुमतिः श्रीचौधमल्लस्तथा ।  
 श्रीमन्तोमुनिराजकाः शुभपराः सप्तोचराविंशति,  
 तस्थुस्तत्रपरेऽपिदेशनपरा लालान्तपन्नागृहे ॥२५६॥  
 व्याख्यानं महतां बभूव जनता सन्तोपदं मोददम्,  
 पुण्यं तत्त्वलु काकरीयसहनं पुण्यापणं प्राजनि ।  
 सुधीलालमुकुन्दजीसहितः पन्नादिलालो धनी,  
 सेवां श्रीमुनिवृन्दकस्य विदधे श्रद्धाञ्च भक्त्यायुतः



रहा। पात्री निवासी श्रीमान् सेठ मुकुन्दचन्द्रजी वालिया, सेठ चुन्नीलालजी सोनी और सेठ पन्नालालजी काँकरिया आदि महानुभावों ने मुनिवरों की खूब ही सेवा-भक्ति की ॥२५६-२५७॥

नेत्राश्वाङ्कमहीमिते शुभतमे माघे सिते पञ्चमो-  
तिथ्यां सः मुनिसंघदेशनवशात् श्रीदेविलालादिभिः ।  
पञ्चाम्बुं प्रस्थित्य नूतनपुरोमार्गोऽजमेरादिके,  
व्याख्यानं विदधन् यथावलवरं श्रीखूबचन्द्रोमुनिः ॥  
आघ्रातः समुपाययौ मुनिवरं श्रीसंघकस्तत्र तम्,

गन्धूलाल जी चौधरी को दरिद्र में विराजित श्री जवाहिरलालजी महाराज के पास भेजे । दरिद्र से श्रीमान् बबील गन्धूलालजी द्वारा मुनि श्री जवाहिरलालजी महाराज की तरफ से प्यावर श्री संघ के पास सम्मति आई, कि मुनि श्री मुन्नालालजी महाराज की पूज्य-पद पर प्रतिष्ठित कर दिये जायें। उधर जम्मू से भी जाधरा-निवासि श्री नगर्नी-रामजी राबा द्वारा मुनि श्री मुन्नालालजी म० की झोर में आचार्य-पद स्वीकार करने की सूचना प्राप्त हुई। तथापि टीकान बहादुर सेठ उग्मेठमलजी छोटा राय बहादुर सेठ हगनमलजी रीयां वाले जी श्री सेठ रतनलालजी सरायगी आदि महानुभावों ने पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज की सेवा में उपस्थित होकर सम्मत् होकर प्रयत्न किया। बिन्तु उनके निष्फल हो जाने पर संवत् १६७१ की शुभ तिथि मन्थ शुक्ल पक्षमी ( दशम पक्षमी ) के दिन श्री मुन्नालालजी महाराज को दस सप्ताह के साथ आचार्य-पद प्रदान कर देने का हुक्म निरूद्ध किया गया।



सूनाःपूर्ववदेव तत्र सुमतिः श्रीमान्यशोरावजी,  
हिंसकारणकारुरोधधनिकः संवत्सरे पर्वणि ॥२६०॥

भावार्थ—वि० सं० १६६७ के चातुर्मास की भाँति अब की वार भी संवत्सरी-पर्व के दिन चरित्रनायकजी के सदुपदेश से, धर्म-प्रेमी श्रीमान् सेठ यशवन्तराय जी सा० के प्रशंसनीय प्रयत्न द्वारा लोहामण्डी और शहर आदि स्थानों के चार कल्ल-खाने बन्द रहे। यों वह चातुर्मास भी बड़े ही आनंद के साथ सम्पन्न हुआ ॥२६०॥

पंजाब में धर्म-प्रचार

वर्षायाः समयं समाप्य मुनिराडत्याग्रहात्पूर्वृणा-  
माग्रायां कतिचिदिनानि वसनं कृत्वा तु दिल्लीं ययौ ।  
जम्भुं गन्तुमनाततोमुनिवरश्रीदेविलालेन सः,  
कालिन्ध्यास्तटगाननेकनगरान् शिचैश्च नाभां ययौ ॥२६१॥

भावार्थ—शहर आगरा का चातुर्मास समाप्त कर के, आप श्रावकों के अत्याग्रह से कुछ दिन लोहामण्डी (आगरा) में ठहर कर, फिर देहली पधारे। यहाँ से पंडित मुनि श्रीदे वीलालजी म० के साथ आपने जम्भू (काश्मीर) पधारने के लिए विहार किया। मार्ग में जमुना-न्यार के अनेक क्षेत्रों को तथा करनाल, अन्वाला और पटियाला को पावन करते हुए आप नाभा पधारे ॥२६१॥



विलायतीराममहानुभावं श्रीश्रोमवालं लुधियानवासम् ।  
 संवाजयासोत्सवदीक्षितं तं विधायनाभापुरीतः प्रतस्थे ॥  
 मालेरकोटे जिनधर्मतत्त्वं दिशन् प्रपेदे लुधियानपुर्याम् ।  
 तत्रात्मरामस्य गुरून्प्रपद्य एकत्र पट्टे दिशतिस्म धर्मम् ॥२६३

भावार्थ—नाभा मे आपके पास, लुधियाना निवासी श्री विलाय-  
 तीराम जी नामक एक श्रोमवाल बन्धु ने दीक्षा स्वीकार की । नाभा  
 श्री संघ ने दीक्षोत्सव बड़े ही समारोह के साथ मनाया । नाभा से  
 प्रस्थान कर, आप मालेरकोटला होते हुए लुधियाना पधारे ।  
 वहाँ पंजाबी मुनि उपाध्याय श्री पं० आत्मारामजी म० के गुरु, दादा-  
 गुरु और उनके गुरु विराजमान थे । उन मुनिराजों के साथ चरित्र-  
 नायकजी ने बड़ा ही प्रेम तथा वात्सल्यता का भाव प्रकट किया ।  
 और उन्हीं के निवास-स्थान में एक ही पट्टे पर बैठ कर व्याख्यान  
 दिये ॥२६२-२६३॥

ततः कपूरस्थलकं पवित्वा, जलन्धरं प्राप्यसतीं प्रवृद्धाम् ।  
 श्रीपार्वतीं चन्द्रमतीञ्च दृष्ट्वा सुधासरे पूज्यमुनिं प्रवृद्धम् ।  
 श्रीकाशिरामोदयचन्द्रकाभ्यां, ददर्शतं सोहनलालजीकम्,  
 प्रश्नोत्तराणि भवताञ्च तेषां, जातानि वात्सल्यप्रभावितानि

भावार्थ—लुधियाना से फगवाड़ा और कपूरथला होते हुए  
 जालंधर पधारे । वहाँ भारत-विख्याता, विदुषी सतीजी श्री पार्वती  
 जी महाराज और विदुषी सती श्री चन्दादेवीजी म० आदि सतियाँ  
 विराजती थीं । उनके साथ भी आपकी यथायोग्य वात्सल्यता रही

और परस्पर शान्त-वर्त्ता भी होती रही। फिर आप मंडियाला होने हुए अमृतसर पवारे। वहाँ पर विद्यान् और वज्रोद्भूत पूज्यनी सोहन-ताल्नी महाराज, गरिबी श्री उदयचंद्रजी म० और सुभाचार्य पंडित सुनि श्री काशीरामजी म० के साथ भी आपका प्रेम वात्सल्य अच्छा रहा। परस्पर शांति-प्रश्नेत्तर भी दयेष्ट रीति से हुए। २६३-६५

सैत्राणि संपूय वृद्धि नद्यः श्रीलालचन्द्रैः जैरुमुनिभिः

सस्त्रागणं पण्डितदेविलासैः सुरयासकोट्यन्व ततः प्रपदे ॥

एकत्र पट्टे दिशानं द्वयोरत्र बभूव सत्रेनपरं वृषभ्य ।

वृषादरं जन्तुनरं मनीन्द्रो-सुभेन्दुवालेन्दुसुनी प्रनभ्ये ॥२६७

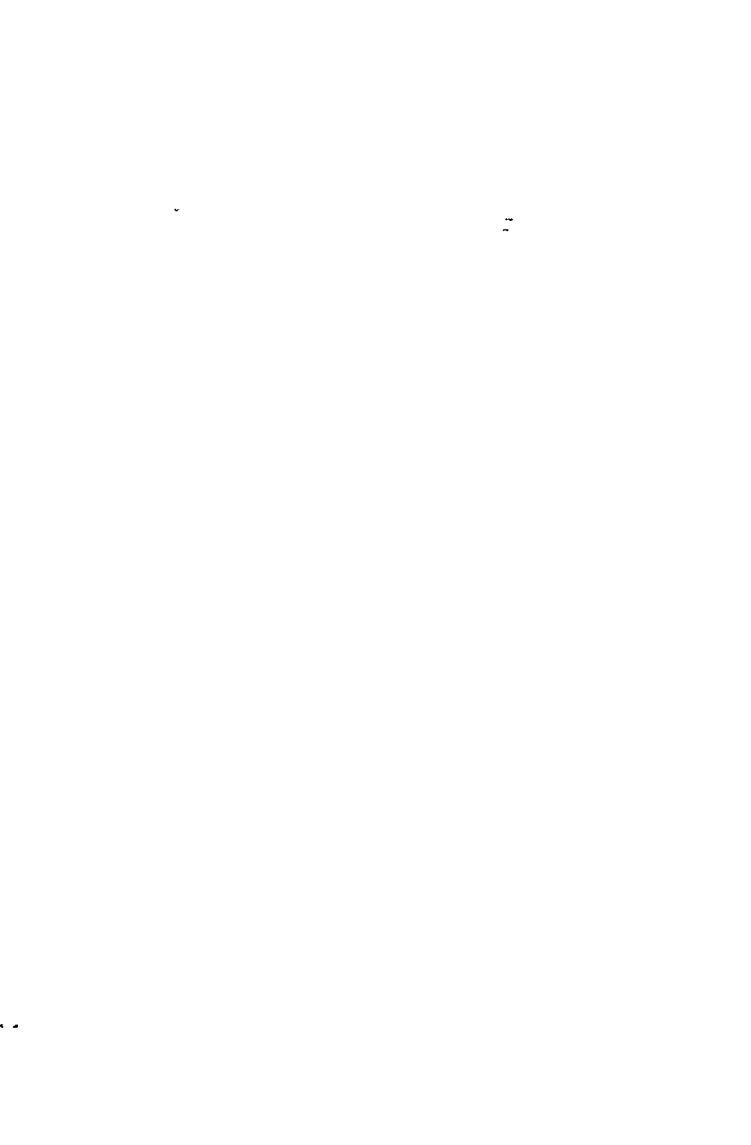
भावार्थ—अमृतसर से विहार कर, परस्पर आदि कई जेठों ने होने हुए आप शहर त्यागते हैं पवारे। वहाँ पर वज्रोद्भूत और पंडित सन्तान ने साथ से उड़े पंडित सुनि श्री लालचन्द्रजी म० सा० विद्याचन्द्र थे। उन्होंने पंडित सुनि श्री देवीरामजी म० और श्री परित्तनाथजी म० का प्रेम पूजक यथायोग्य स्वगत किया। एक ही स्थान पर ठहरे और बरगजन भी मन्निहित ही हुए। वहाँ से ऊपर जन्तुनरी पवारे। वहाँ से ही मंड ने जन्तु-धनि के साथ आपका बहा ही शान्दर स्वगत किया। नगर के पवारे करते ही ऊपर से ही सुनि श्री सुभाचार्यजी म० एवं लालजी श्री लालचन्द्रजी म० से साथ से ललित हुए। २६६-७३।



वर्षावसानसमये मधवानगर्याम्,  
मुन्नेन्दुवालशशिना प्रययौ महात्मा ।  
तत्रागतालवरसंघनिवेदनेन,  
वर्षाव्यतीतकरणाय ततः प्रपेदे ॥२७१॥

भावार्थ—जम्मू श्री संघ के विशेष आम्रह से, तथा पूज्य श्री की आज्ञा से प्रेरित होकर आपने संवत् १६७५ का चातुर्मास काश्मीर देशस्थ जम्मू नगर में ही किया। इस चातुर्मास में आपकी अमृतोपम वाणी से श्री संघ में तपस्या तथा धर्म-ध्यान का खूब ही उद्योग हुआ। चातुर्मास की समाप्ति के पश्चान् आचार्य श्री जी के साथ-साथ उनकी सेवा में रह कर आप अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए, पुनः दिल्ली नगर में पधारे। और फिर अलवर श्री संघ का विशेष आम्रह देस कर पूज्य श्री की आज्ञा से चातुर्मास के लिए अलवर पधारे ॥२७०-२७१॥

अलवरपुरमध्ये योगनिष्ठोऽर्नान्द्रः  
रसमुनिनिधिभूमिवत्सरे दिक्कर्मणि ।  
समनयतसुजैनोक्त्या गिरार्हर्षवेत्ता,  
दिविधसदुपदेशैस्तच्चतुर्मानिकञ्च ॥२७२॥  
मुनिवरपथगामीश्रीमयाचन्द्रयोगी  
तप अतुमत्तपयस्तततो पैत नानम् ।  
अभिहिततुतपोऽन्ते नदृष्टोद्यमेन,



ई. की आह्वानुसार शहर में समस्त बूचड़खाने तथा भड़भूजे हलवाई, धोबी, और सुनारों की भट्टियाँ भी बन्द रहीं। सरकारी बगीचों के अजायबघरों में रहने वाले महाराजा साहब के शेरों को भी उस दिन माँस के बदले दूध पिलाया गया। और पारणों के दिन, दीन-दुखी प्राणियों को भोजन वस्त्र और धन आदि दान दिया गया। उस दिन जितने भी कार्य हुए वे सब-के-सब दीन-दुखी और दरिद्रों तथा धर्म-कार्य-निरत व्यक्तियों के लिए सुख प्रदायक थे।

नरनिकरमुखान्जप्रैरिताहास्यवर्षा.

समजनि वसुधाया हर्षहास्यप्रभेव ।

तदनुमनुजवृन्दैः श्रूयमाणः स्मितास्यै-

दिवि निरवधिरुच्चैर्दुन्दुभीनां निनादः ॥२७२

भावार्थ—उस समय पृथ्वी-मण्डल के नैसर्गिक परिहास की असाधारण क्रान्ति के समान पुरुषों के मुख-मण्डल से हर्ष की वर्षा हुई। और आकाश-मण्डल को गूँजा देने वाली भेरियों एवं दुन्दुभियों का गगन-भेदी निनाद हुआ ॥२७२॥

जयपुरनगरेऽजाश्वक्लुभ्वैक्रमाब्देऽ-

नयतश्चिदचातुर्मासिमुग्रप्रभावैः ।

गुरुवरपद्भक्तश्रीप्रभाग्रानिवासी,

जिनशुभपथजोऽभूत्कूलचन्द्रस्य चतुः ॥२७३॥

स्फुरदमलगुणौषः पुण्यगण्यः तुनामा,

नयनिनयविवेकोग्रानपुंस्कोकिलो यः ।  
 गुजनकमलभानुर्दुष्टकत्रे कृशानुः,  
 यरिवृढदृढभक्तीरेखचन्द्रोगुणीन्द्रः ॥२७४॥  
 ललितभुवनमध्ये तस्य योगीन्यवात्मीन्,  
 जिनपतिवचनाकैः प्रापुफुलत्रयाञ्जम् ।  
 अजिनजिनमनुप्याः प्राप्सतप्रमेभावैः,  
 प्रणिहितजिनधर्म कर्मनिर्मूलनाय ॥२७५॥

भावार्थ—वि० सं० १६७७ का चातुर्मास आपने जयपुर में किया । वहाँ पर भक्त-शिरोमणि, आगरा निवासी श्रीमान् सेठ रेखचन्द्रजी के सुपुत्र श्री फूलचन्द्रजी की हवेली में निवास किया । वहाँ पर भगवान् के वचन रूपी सूर्य द्वारा आपने धर्म रूपी कमल को विकसित किया । और जैन तथा जैनेतर जनता के हृदय-प्रदेश में, कर्म-ग्रन्थि का समूल नाश करने के लिए, धर्म के प्रभाव को स्थायी रूप से अंकित कर दिया ॥२७३-२७५॥

तत्रातपत्सोष्णजलाश्रयेण, मासं मयाचन्द्रयतिस्तपस्वी ।  
 तन्पारणान्ते जिनशास्त्रशिष्ट्या, दानैर्यशोभिःसुरभीकृतासङ्गम्  
 तपोव्रतस्याचरणादधश्यं, पुण्यावधेः सिद्धिरसादिवातः ।

कन्याणकोटि कलयाञ्चकार, कराम्बु केकस्य न लास्यलीलम्

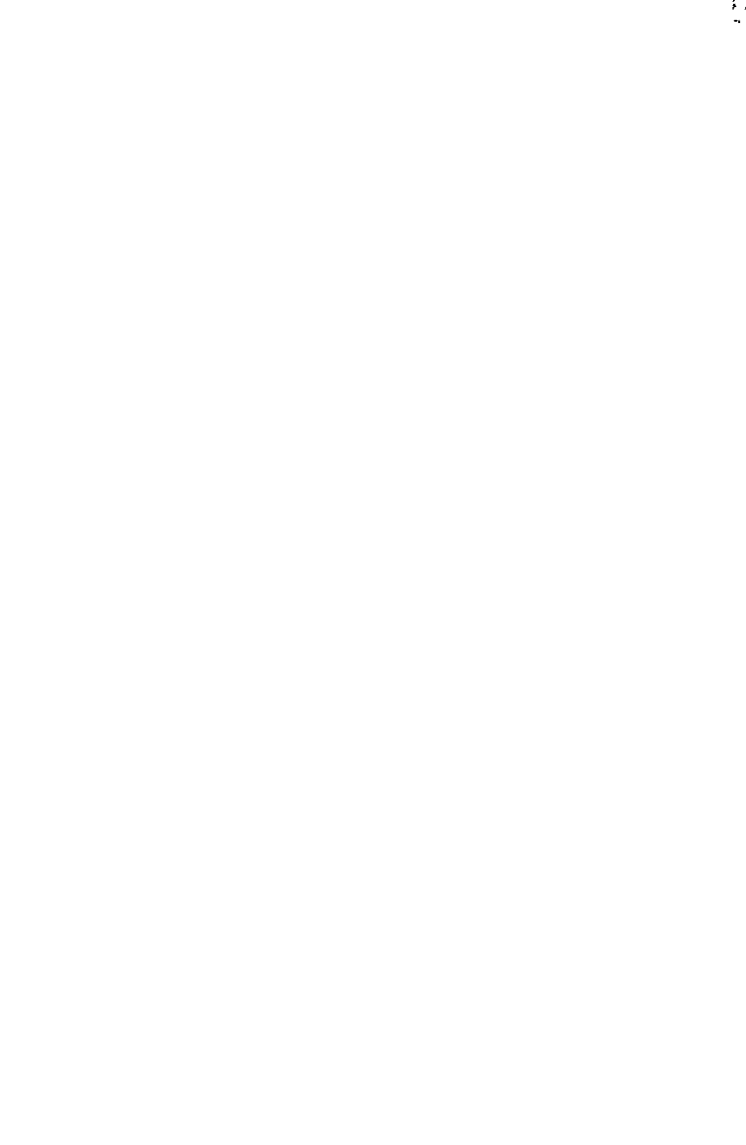
तरङ्गिगीतध्वनिस्फूर्जिततूर्यनादः ।

मोदयामासकथाप्रबन्धैविशोपतोऽशेषमनीषिहृद्यैः ॥२७८॥













पश्चाद्रामपुरे कृतं निधिहय द्वारावती वत्सरे ॥२८०॥  
 तद्वर्षे शुचिमाघमामि विदिते श्रीमन्दसौरस्थले,  
 द्वीक्षां दूग्गडगोत्रभूतवणिजौ ताताङ्गजौ श्रद्धया ।  
 लक्ष्मीचन्द्रपवित्रशिष्टनयभृच्छ्र्वेतांशुशुभप्रभ,  
 हीरालालसुधर्मभावनिरतौ सम्प्रादधातां तदा ॥२८१॥

भावार्थ—जयपुर का चातुर्मास समाप्त करके आपने वि० सं० १९७८ का चातुर्मास मन्दसौर में किया । उसी वर्ष के मार्ग-शीर्ष मास में मन्दसौर निवासी पोरवाड महाजन श्री ब्रजलाल जी, आपकी सेवा में दीक्षित हुए । तत्पश्चात् विक्रम संवत् १९७९ का चातुर्मास रामपुरा (होलकर स्टेट) में मनाया गया ॥२८०॥ रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद उसी वर्ष माघ मास में मन्दसौर निवासी दूग्गड़ गोत्रोत्पन्न श्री लक्ष्मीचन्द्र जी एवं श्री हीरालालजी यह दोनों पिता-पुत्र चरित्रनायकजी की सेवा में दीक्षित हुए ॥२८१॥

अगमदजयमेरुं धर्मसंवर्धनाय,

नभवसुनिधीभूमीवत्सरे योगनिष्ठः ।

कृतनिखिलपदार्थद्योतनां भारतीद्वाम्,

वितरति धुतदोषां सार्हतीं भारतीं वः ॥२८२॥

भावार्थ—वि० सं० १९८० का चातुर्मास आपने धर्म की विशेष वृद्धि के निमित्त अजमेर में किया । यहाँ पर आपने वीर

प्रभु द्वारा प्रतिष्ठित तत्त्वों का भली प्रकार से निरूपण करके धर्म-  
ध्यान का दिव्य प्रकाश किया ॥२२२॥

प्रायाद्गुरोर्भक्तिनिपिक्तवते, ततो मुनिर्व्यावरणामपुर्याम्  
दृष्ट्वागुरुं योगपनन्दलालममृदत्पादसरोजमृङ्गाः ॥२२३॥  
तत्पद्मनादैर्गुरूणा सहैपस्त्रालं दुस्सानीञ्च मदारियाञ्च ।  
कोशीस्यलं गङ्गपुरं पुरञ्च यात्रा समायात्पुरभीलवाडाम् ॥  
व्याख्यानविज्ञाःसुधियोमुनीन्द्रास्तत्राचक्रानुःस्वरशक्तिगुम्फाः  
चैत्रेऽस्मिन्ने द्वादशमीतिथौ च सोमेऽदिदीन्त्रिस्त्रवर्णिग्मनुष्यान् ॥  
निर्विण्यं तं महाभागं, रत्नलालं गुणान्वितम् ।  
भण्ढारीगोत्रसम्भूतं श्रीमद्विखभचन्द्रकम् ॥२२६॥  
प्राडवागन्वयञ्च चैव सुयोतं राजरत्नकम् ।  
दशसहस्रसंख्याताजनाः प्रारैयुरुत्सवम् ॥२२७॥  
चैत्रे महावीरतिभोजयन्ती दिने समागोहरमापविष्ट ।  
प्रसिद्धवक्ता मुनिर्चापमल्लो विद्वत्सु रत्नं मुनिदेविलालः ॥  
मद्भागतीक्षाः मङ्गलाः सुनीन्द्रा इत्यादयः पुरतया चक्रानुः ।  
जिनेन्द्रधर्मस्य महद्गतीनां प्रमोदमुद्राः समधुर्जनानाम् ॥  
ततोऽगमद्रवणं सुनीगः मनाप्यपीज्जागजन्दचन्द्रे ।  
वर्षे तथा मद्गुरुरादपङ्क्तिन्ना तन्निन्ना जिनवर्मदृष्टिम् ॥

भावार्थ—एकमेव ही विद्वान् पर ध्यान ध्यान पर ध्यान । दर्शन  
पर नर दर्शन श्री मन्त्रालय २० विगतजनन धे । मन्त्रालय पर

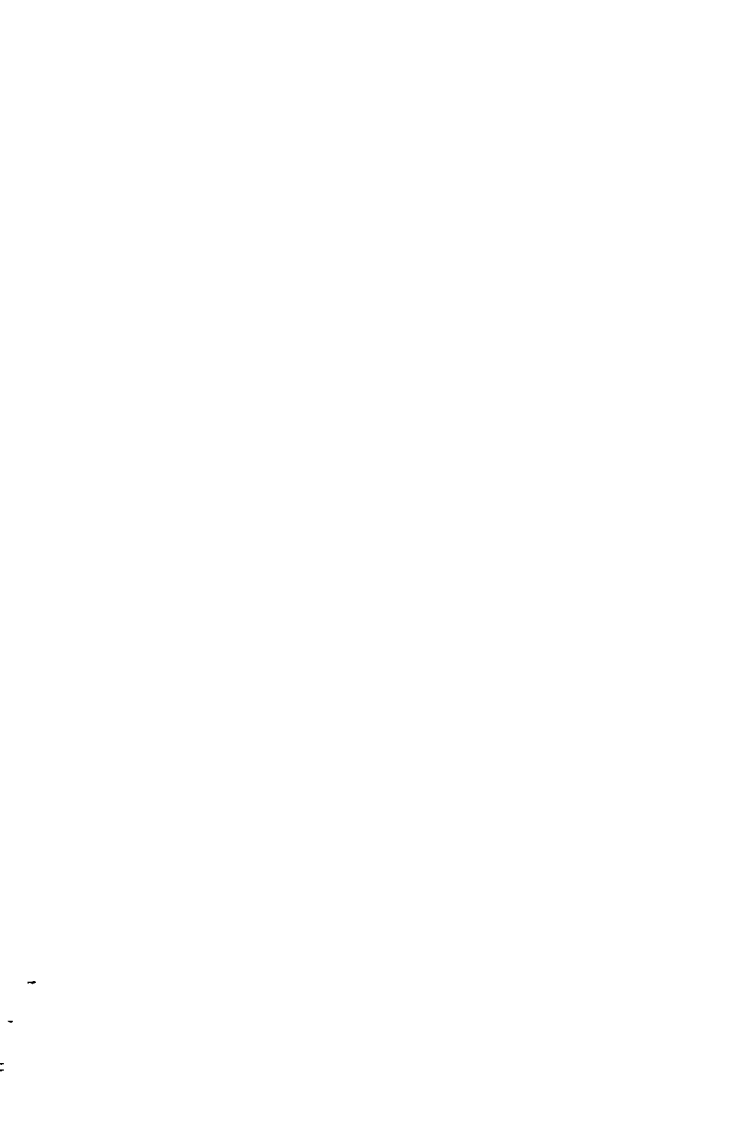


प्रभु द्वारा प्ररूपित तत्वों का भली प्रकार से निरूपण करके धर्म-  
ध्यान का दिव्य प्रकाश किया ॥२८२॥

प्रायाद्गुरोर्भक्तिनिषिक्तचते, ततो मुनिव्याधिरनामपुर्याम्  
दृष्ट्वागुरुं योगपनन्दलालममृष्टत्पादसरोजभृङ्गाः॥२८३॥  
तत्पदनादैद्गुस्त्रणा सहैपस्तालं लुप्तानीञ्च मदारियाञ्च ।  
कोशीस्थलं गङ्गपुरं पुरञ्च यात्रा समायात्पुरभीलवाडाम् ॥  
व्याख्यानविज्ञाःसुधियोमुनीन्द्रास्तत्राचक्रासुःस्वरशक्तिगुम्फाः  
चैत्रेसिते द्वादशमीतिथौ च सोमेऽदिदीत्रिचवर्णिगमनुप्यान् ॥  
निर्विण्णं तं महाभागं, खलालं गुणान्वितम् ।  
भण्डारीगोत्रसम्भूतं श्रीमद्विखभचन्द्रकम् ॥२८६॥  
प्राडवागन्वयजं चैव मुण्योतं राजमल्लकम् ।  
दशसहस्रसंख्याताजनाः प्राणैयुरुत्सवम् ॥२८७॥  
चैत्रेमहावीरनिर्भोजयन्ती दिने समारोहणभाषविष्ट ।  
प्रसिद्धवक्ता मुनिचौधमल्लो विद्वत्सु रत्नं मुनिदेविलालः ॥  
नङ्गारतीक्षाः सकलाः मुनीन्द्रा इत्यादयः पूर्णतया चक्रासुः ।  
जिनेन्द्रधर्मस्य समुद्रतीनां प्रमोदमुद्राः समधुर्जनानाम् ॥  
ततोऽजमद्रक्षपुरे मुनीशः समाव्ययीडलासज्जन्दचन्द्रे ।  
वर्षे तथा सद्गुरपाजपद्भिन्ना तन्निन्वा जिनपर्वहृदिन् ॥

भावार्थ—कलनेर से विहार कर एतत् एतत् पथारे । सर्व  
पर सुखवर्षे । गन्तव्ये २० दिनाङ्कान् से । एतत् एतत्





१६८१ का चातुर्मास आपने अपने गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य कर रतलाम में किया। वहाँ पर भी पूर्ण रूप से धर्म-जागृति हुई ॥२६०॥

चातुर्मासमभीषितं करसुरद्वारजमावत्सरे,  
 नेतुं पर्यटनेऽग्रसिद्धसहसा नेत्रव्यथानीमचे ।  
 तत्स्थानाद्गुच्छा नहैव समयान्मल्हारगदस्थले,  
 डाक्टरश्रीधनजीमुदजपुरुषः संप्राचिकित्सीत्तदा ॥२६१॥  
 परचात्प्रे क्तिगनमुं खामृतवचः पीनृपपूर्णाकरः,  
 डाक्टरश्रीयुतरामनाथमुगुणी श्रीमन्दसौरैऽपिजत् ।  
 तेन प्रकृति संस्थितोमुनिवरोगूलावचन्द्रः सुधी-  
 श्चातुर्मासमनित्तपूर्णयशसा तपोदुश्चरम् ॥२६२॥

भावार्थ—रतलाम का चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् वि० नं० १६८२ का चातुर्मास मन्दसौर में मनाने के लिए आप अपने गुरु श्री नंदलालजी न० की सेवा में नीमच पधारे। वहाँ पर आपकी एक छाँद में बड़ी भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई। छत आप अपने गुरु श्री के साथ ही मत्स्यगढ़ पहुँचे। वहाँ पर धनजी भाई नामक एक पुर होक्टर ने आपकी नेत्र-पीड़ा की पूर्ण चिकित्सा की ॥२६१॥ फिर आप मत्स्यगढ़ से मन्दसौर पहुँचे। वहाँ एक सिल-रूम प्रोफेसर् डाक्टर श्री रामनाथजी की चिकित्सा द्वारा परिश्रमापन की नेत्र-पीड़ा शान्त हुई। इन





गुरुदेव के पवित्र चरण-कमल की शरण को प्राप्त करके भ्रमर की भाँति परम प्रमुदित हुए ॥२८३॥ फिर गुरुजी के साथ ही साथ वहाँ से विहार कर मार्ग में ताल, लसानी, मदारिया, कोशीधल, गद्दापुर और पुर आदि स्थानों के निवासी भूले-भटके संसारी जीवों को धर्म का सन्देश सुनाने हुए भीलवाड़ा में पवार गये ॥२८४॥ भीलवाड़ा में उस समय व्याख्यान कला-प्रवीण विद्वद्वर्य प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज आदि ३७ मुनि-राज विराजमान थे । वहाँ पर उक्त प्रसिद्धवक्ताजी की सेवा में चैत्र शुक्ल द्वादशी सोमवार के दिन, तीन चैश्य भाइयों की दीक्षा हुई ॥ २८५ ॥ उन तीनों दीक्षार्थियों में से प्रथम दीक्षार्थी श्री राजमलजी थे । और दूसरे भंडारी गोत्रोत्पन्न श्रीमान् रिखवचन्द्रजी तथा तीसरे पोरवाड़ वंशोत्पन्न श्री रत्नलाल जी थे । इन तीनों दीक्षार्थियों के दीक्षा-महोत्सव का कार्यक्रम दस हजार की विराट् मानव-मेदिनी के बीच बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ ॥२८६-२८७॥ तदनन्तर चैत्र शुक्ल १३ के दिन मुनि-मण्डल की संरक्षता में महावीर जयन्ती महोत्सव बड़े उत्साह पूर्वक मनाया गया । प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी म०, विद्वद्वर्य पं० मुनि श्री देवीलालजी म०, एवं हमारे चरित्रनायकजी आदि मुनि-रत्नों ने धर्मोन्नति के लिए जन-समाज में अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा आनन्द-वर्षा की ऋड़ी लगा दी । जिससे भक्त्य प्राणियों का हृदय अत्यन्त प्रमुदित हुआ ॥२८८-२८९॥ इसके पश्चात् वि० संवत्

१६८१ का चातुर्नाम आपने अपने गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य कर रतलाम ने किया। वहाँ पर भी पूर्ण रूप से धर्म-जागृति हुई ॥२६०॥

चातुर्मासमभीप्सितं करसुरद्वारजमावत्सरे,  
 नेतुं पर्यटनेऽग्रसिद्धसहस्रा नेत्रव्यथानीमचे ।  
 तत्स्थानाद्गुरुणा सहैव समयान्मल्हारगढस्थले,  
 डाक्टर श्रीधनजीसुदक्षपुरुषः संप्राचिकित्सीत्तदा ॥२६१॥  
 पश्चात्प्रोक्तिशान्मुखासृजवचः पीयूषपूर्णकिरः,  
 डाक्टर श्रीयुतरामनाथसुगुणी श्रीमन्दसौरैऽपिजन् ।  
 तेन प्रकृति संस्थितोमुनिवरोगूलावचन्द्रः सुधी-  
 श्चातुर्मासमनिक्तपूर्णयशसा तपोदुश्चरम् ॥२६२॥

भावार्थ—रतलाम का चातुर्नाम पूर्ण करने के पश्चात् वि० नं० १६८२ का चातुर्नाम मन्दसौर ने मनाने के लिए आप अपने गुरु श्री नंदलालजी न० की सेवा में नीमच पधारे। वहाँ पर आपकी एक औंख में बड़ी भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई। छत्र-आप अपने गुरु श्री के साथ ही मल्हारगढ़ पहुँचे। वहाँ पर धनजी भाई नामक एक पट्टर डॉक्टर ने आपकी नेत्र-पीड़ा की पूर्ण चिकित्सा की ॥२६१॥ फिर आप मल्हारगढ़ से मन्दसौर पहुँचे। वहाँ एक सिद्ध-रत्न प्रोफेसर् डाक्टर श्री रामनाथजी की चिकित्सा द्वारा परिश्रमापकी की नेत्र-पीड़ा शान्त हुई। इस

प्रकार पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर के आपने वहाँ पर भी महान उम्र तपश्चरणा एवं धर्मोपदेशादि कार्यों से चानुर्मान समान करके विद्वार किया ॥२६२॥

अम्लावटं वीज्य ततोमुनीन्द्रो नन्दावतां चैव निमोदमायात्  
 आकोदढायां न्यवसत्प्रभावी श्रीमद्गुरोः पादसरोजभृङ्गः ॥  
 वचोहरस्तत्र समारिञ्च वीणीमभाणीत्सहसा मुनीन्द्रम् ।  
 वणिगदफड्या कुलजोगुलावचन्द्रोऽधुनाऽर्वाभजतोपताम् ॥  
 समीचितुं त्वच्चरणारविन्दमेतुं स्तवीने पुरजावरायाम् ।  
 नेनिञ्च लिप्सां कृपया प्रभोत्वं तनुष्व धर्मं हि पिपूहि सौख्यं  
 मुनीश्वरः श्रीगुरुणा सहैव श्रीजावरायां समयात्ततश्च ।  
 समीच्य तं श्रेष्ठिवरोऽवदच्च त्वदर्शनानन्दमयोत्सवोमे ॥  
 गुर्वास्यचन्द्रामृतसिक्तसङ्घः, पतुं चतुर्मासमुदग्रभावैः ।  
 सम्प्रार्थयासमास मुनीन्द्रवृन्दं, स्थित्वा ततोऽवर्धत जैनधर्मम्  
 तिस्रस्ततः प्रावृष उत्सवेन, समव्ययत्सङ्घशुभाग्रहेण ।  
 श्रीजावरायां मुनिसत्तमोऽयं, धर्मस्य वृद्धिं महतीं ततान ॥  
 अतीतपत्तत्र तपोधनश्च, नाभा छत्रालाल उदग्रवुद्धिः ।  
 प्रणम्य सवेज्जमनन्तमीशं, जिनेन्द्रचन्द्रं धुतकर्मन्धम् ॥२६६

अष्टचत्वारिंशद्दिनान्युष्णोदकाश्रयेण ।

समातन्त्रित योगराट् रूढ्वा मनोहरिम् ॥३००॥

भावार्थ—वहाँ से अमरावट, नन्दावता और निम्बोद आदि

क्षेत्रों को पवित्र करते हुए हमारे चरित्रनायक, गुरु-पद-कमल-भ्रमर प्रभावशाली श्री खूबचंद्रजी म० ने आँकोदड़ा नामक ग्राम को अलं-कृत किया ॥२६६॥ जिस समय हमारे चरित्रनाकजी अपने गुरु महाराज के साथ आँकोदड़ा में विराजमान थे । उसी समय एक व्यक्ति ने जावरा से आकर निवेदन किया कि-“मुनिनाथ ! जावरा में सेठ गुलाबचंद्रजी दफडिया अस्वस्थ हैं । वे श्रीमान् के चरण-कमल के दर्शन करने के लिए चिर-अभिलाषी हैं । और प्रभु की पावन-शरण में उन्होंने विनय पूर्वक प्रार्थना करवाई है, कि आप जावरा में पदार्पण करके धर्म तथा कल्याण का प्रशस्त मार्ग बतला कर मुझे कृत-कृत्य करें” ॥२६४-२६५॥ संदेश-वाहक द्वारा की गई प्रार्थना पर ध्यान देकर आप अपने गुरुजी के साथ शीघ्र ही जावरा पधारे । और वहाँ सेठजी को दर्शन देकर उन्हें परमनंदित किये ॥२६६॥ गुरुजों के चंद्र-मुख द्वारा भाषित अमृतमयी अनुपम वाणी से वृत्त होकर जावरा श्री संघ ने अपने यहाँ चातुर्मास करने के लिए मुनिराजों की सेवा में प्रार्थना की । मुनिराजों ने इस विनंती को स्वीकार कर वहाँ पर धर्म की खूब ही प्रभावना की ॥२६७॥ संघ को प्रार्थना से लगातर तीन चातुर्मास अर्थात् वि० सं० १६८३-८४ और ८५ का चातुर्मास आपने जावरा में ही व्यतीत करके, वहाँ धर्म की खूब ही अभिवृद्धि की ॥२६८॥ संवत् १६८३ में वहाँ तपोधन मुनि श्री द्वब्जालालजी म० ने मोक्ष-प्रदायी श्रीजिनेन्द्रदेव के ध्यान में लीन होकर केवल गर्म जल



के अधार से अपने मन रूपी चंचल बंदर को बश मे करके अठ  
तालीस दिन का अनशन-व्रत किया ॥२६६-३००॥

जैनज्ञानसुवृद्धिनामरुचिर श्रीपाठशालाश्रिताः,

सर्वे बालकबालिका मुनिवर श्रीसौख्यलालस्तदा ।

पर्यैक्षिष्टसुशिक्षणं प्रतिफलैरापिप्रयच्छीनवल-

मल्लस्यात्मजसूर्यमल्ल उचितो धोकावटं कोद्भवः ॥३०१

पुस्तकैर्वसनैश्चैव त्रयोः संपुटकादिभिः ।

स्नादिष्टैः शर्कराखाद्यैः समाभाजुर्महोत्सवम् ॥३०२॥

कुमारा एकपञ्चाशत्संख्याता भारतीगृहे ।

ऊनविंशतिकौमार्यस्तत्काले प्रायशोऽध्यगुः ॥३०३॥

भावार्थ—इस समय चरित्रनायकजी के सुशिष्य मुनि श्री सुख-  
लालजी म० ने स्थानीय श्री जैन ज्ञानवृद्धि पाठशाला के बालक-बा-  
लिकाओं की परीक्षा ली । परीक्षा का परिणाम पूर्ण संतोपजनक  
निकला । अतः इसके उपलक्ष्य मे यादगिरी निवासी सेठ श्री नवल-  
मलजी सूर्यमलजी सा० धोका की ओर से पारितोषिक दिया गया  
॥३०१॥ पुस्तकें, कपड़े आदि के साथ-साथ पेड़ों की भी प्रभावना  
हुई । उस समय पाठशाला मे ५१ लड़के और १६ कन्याएँ विद्या-  
भ्यास करती थीं ॥३०२-३०३॥

चातुर्मासं जावरायां समाप्य, ऊन्नरवाडां वोरखेडां तथा च ।  
हृत्नारां स नादलेटां हु लित्वा, शैलानायामाहिनोद्धर्मवृद्ध्यै



से सुशोभित होते हुए आप धारा नगरी पधारे । और वहाँ पर भी धर्म का महान् उद्योत किया ॥३०७॥

धाराद्विहृत्यागतक्षेत्रकेषु, हिंसादिकृत्यांश्च निवार्यमानः ।  
 श्रीखाचरोदे रतलामसंबः प्रार्थार्कृते तं समुद्रः प्रपेदे ॥३०८॥  
 अत्याग्रहात्पूज्यनिदेशनाच्च, पण्णागभूखण्डमहीमिते सः ।  
 रत्नेर्ललामां च पुनश्चचाल, मासाय तुर्याय मुनीशचन्द्र ॥  
 तत्स्थाने सुतपोधनोमुनिवरोनामाछ्वालालजी,  
 प्रातासीद्वसुधैवहानि नियमैरुष्णोदकस्याश्रयैः ।  
 भाद्रे शुक्लचतुर्दशे कुजयुते घस्रं तपः पारणे,  
 सद्भक्ताः समनेनिजुः शुभतरं भक्तिप्रभावोत्सवम् ॥३१०॥  
 श्रीमत्सज्जनसिंहशुभ्रचरितश्रीरत्नपूभूर्पति,  
 निर्देशः समरुद्धपाकपुटिकानाडिंधमानां ततः  
 सूनांसीधगृहं तथान्यदुरितस्थानं गुरुज्ञानतो-  
 वीतत्रासविलासहासरभसं ध्यात्वा जिदानां पतिम् ॥३११॥  
 ऐषुः सप्तसहस्रभक्तमनुजाः सानन्दशीच्युच्छलाः,  
 मन्त्रीग्रासमहीभृतोनरवराः पञ्चेडपालादयः ।  
 मुन्नालालमुनीन्द्रगच्छतिलका वादीभपञ्चाननाः,  
 आसन् श्रीगुरुधर्ममूर्तिमुनयः कल्याणकन्दाभ्युदाः ॥३१२॥

भावार्थ—धार से विहार कर आपने नागदा, विड़वाल, कोद, चवखतगढ़, वदनावर और मूलथान आदि क्षेत्रों को पावन किया ।

यों मार्ग की नमस्त देहाती (प्रानीण) जैन-जैनेतर प्रजा का पथ-प्रदर्शन करने हुए तथा उन्हें जीव-हिमादि वृहत्त्यों के पदों से विरुक्त करने हुए आपने त्वाचरोद की भूमि में पदार्पण किया । जब आप त्वाचरोद में विराजते थे । तब रतलाम का धी संघ आपका सेवा में उपस्थित हुआ । और आगामी चातुर्मास अपने यहाँ करने की उनसे जोरदार प्रार्थना की ॥३०८॥ आचार्य श्री एवं गुरुव्यवजी म० के आदेशानुसार श्री संघ की विन्ती को मान देकर आपने संवत् १६८६ का चातुर्मास मध्यभारत के सुप्रसिद्ध नगर रतलाम में किया ॥३०९॥ रतलाम में आपके समीपवर्ती तपस्वी मुनिश्री हृद्वालालजी पहाराजने केवल गरम जल के आधार से ५१ दिन की तपश्चर्या की । भाद्रपद शुक्ल १४ मङ्गलवार के दिन पारणा हुआ । अतः उस दिन अन्यन्य भाविक भक्तों ने मिलकर बड़े ही समाराह से भक्ति-भाव पूर्वक तप महोत्सव मनाया ॥३१०॥ उस महोत्सव के दिन रतलाम नरेश हिज हाईनेस महाराजा सर सज्जनसिंह जी बहादुर के, सो, आई, के, सी, वी, ओ, ए, डी, सी, ई, ने अपनी राज-घोषणा द्वारा शहर के समस्त हिंसा काण्डों को स्थगित करवा कर भगवान् महावीर के गौरवपूर्ण धर्म के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा प्रकट की ॥३११॥ उस तपोत्सव पर धर्म-मूर्ति, बल्याणकारी तथा आर्दश मुनिराजों के प्रभाव से लगभग सात हजार जन-संख्या उपस्थित हो गई थी । रतलाम राज्य के दीवान तथा अन्यान्य जागीरदारों ने और पंचेड के ठाकुर साहब

श्री चैनसिंहजी महोदय ने भी मुनिवरों के व्याख्यान में भाग लिया था ॥३१२॥

जिनेन्द्रधर्मस्य समुन्नतीनां, सार्वीत्रकीणां परभागभाजाम् ।  
उद्घाटयामासमहोत्सवेन, मुनीशत्रोधैर्जिनपाठशालाम् ॥

भावार्थ—वहाँ रतलाम में जैन धर्म तथा विद्या की उन्नति के हेतु धर्म-जिज्ञासुओं के लिए मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० के सदुपदेश से एक जैन पाठशाला का उद्घाटन हुआ ॥३१३॥

समाप्य पष्णागनिधीन्दुजातं, सप्ताष्टभूखण्डमहीभवञ्च ।  
मासाश्चतुर्यान्नगराननेकान्, संपूयमानोनिमचं ङगाम् ॥  
मुन्नेन्दुकं तत्र मुनीशवर्यम्, संसेव्य संदर्श्य सुमाननीयम् ।  
तैरेवसार्धं पुनरेव तत्र, श्रीमन्दसौरमहितं ववार ॥३१५॥  
तत्रैव भण्डारिकुलस्य पाता, श्रीकुक्कडेशस्य निवासीकृष्णः  
संदीक्षितस्तत्र तदैव दैवाद्दर्शं हस्तीमलजिन्मुनीशम् ॥३१६॥

भावार्थ—इस प्रकार संवत् १६८६-८७ और के ८८ चातुर्मास को समाप्त करके आपने रतलाम से विहार किया । मार्ग में बाँगरौद, खाचरौद, नागदामण्डी, आलोट, ताल, गंगधार, सीतामऊ, नारायणगढ़, मल्हारगढ़, और जीरण आदि ग्रामों और नगरों की धर्म-पिपासु जनता में धर्म-प्रचार करते हुए नीमच में विराजित पूज्य श्री मुन्नालालजी म० की सेवा में पवारे । फिर वहाँ से पूज्य श्री के साथ ही साथ आपका शुभागमन मन्दसार नगर में हुआ ।

वहाँ पर कुकड़ेश्वर निवासी भण्डारी गोत्रोत्पन्न लघु वयस्क दीक्षार्थी श्री किशनलालजी की दीक्षा हुई। उसी अवसर पर मारवाड़-देश-पावन-कर्ता पूज्य श्री हस्तीमलजी म० ठाने न का शुभागमन हुआ ॥३१४-३१५-३१६॥

मुद्गेन्दुकोहस्तिमलश्च पूज्या-वेकाशने धर्ममलं दिशन्तौ ।  
विरेजतुः सम्मिलितौ शुभैता-वेकाशने राजितशुक्रजीर्वा ॥  
श्रीहस्तिमल्लोमुनिपूज्यवर्यान्मुद्गेन्दुकाच्चारितनायकाच्च ।  
तुर्याणि सूत्राणि रहस्यपूर्णं प्राध्वैष्ट तत्त्वस्य सुबोधकानि

भावार्थ—पूज्य श्री मन्नालालजी म० और पूज्य श्री हस्तीमलजी म० दोनों एक ही स्थान पर ठहरे। दोनों के व्याख्यान भी सम्मिलित ही हुए। पूज्य श्री हस्तीमलजी म० ने पूज्य श्री मन्नालालजी म० तथा श्री चरित्रनायकजी से चार सूत्रों का अध्यायन किया। तथा जैनागमों के गूढ रहस्य की अनेक धारणाएँ हृदयंगम की ॥३१७-३१८॥

तन्दागभूखण्डमर्हामिते नः, समाप्य वृष्टेः समर्थ मुनीन्द्रः  
दृष्टुं गुणं रत्नललामपुत्र्याम्, श्रीजावरातोहितं प्रपदे ॥  
आज्ञां गुरोः प्राप्य सुर्षपमास्ते, श्रीमन्दनारे वृषभानिमज्जत  
सम्मेलने पूज्यमुनीश्वरेण नार्धतदाजमेरुर्गुं प्रतन्दे ॥३२०॥

भावार्थ—संवत् १६८६ का पाहुनात जावरा ने मन्नालालजी को अपने गुरु जी के दर्शनार्थ रत्नलाल पदारे। और वहाँ से जिन गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करने पौन नाम ने मन्नालालजी मुनि ने पावन करने हुए धारणा के साथ-ही-साथ हस्त मन्नालालजी ने

















भाषे शुक्लशनौ दिने मखतिथौ श्रीमन्दसौरे पुरे,  
ज्यानन्दग्रहगह्वरीपरिमिते संवत्सरे वैक्रमे ।

तत्स्थाने मिलिता जनाः सुकृतिनः सच्छ्रावकाः श्राविकाः,  
संख्यायां नमपूर्णपुष्करशरज्याज्ञापितायां किल ॥३३८॥

भावार्थ—उसी वर्ष के फाल्गुन शुक्ला तृतीया शुक्रवार के दिन रतलाम के स्थानकवासी चतुर्विध संघ ने हमारे चरित्रनायकजी की परम पवित्र कल्याणकारिणी, बोधप्रद और सरस वाणी पर तथा उनके शान्त्यादि आचार्य पदोचित गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें स्वर्गीय पूज्य श्री मुन्नालालजी म० के स्थान पर, आचार्य-पद से सम्मानित किये ॥३५॥ आचार्य-पद से अलंकृत होने के पश्चात् चरित्रनायकजी ने चतुर्विध संघ के समक्ष अपने गच्छ के सुयोग्य साधुओं को उनके गुणानुसार जैन-दिवाकर, युवाचार्य, गणि, उपाध्याय, प्रवर्तक, और सलाहकारक आदि पद-प्रदान किये जाने की महत्वपूर्ण घोषणा की । इस घोषणा के शुभ समाचार वायुवेग की तरह नगर-निवा-सियों के कर्ण-बुद्धों में गूँज उठे । अन्त्याय प्राणों और नगरों के भी संघों ने भी इस महत्वपूर्ण घोषणा का हादिक स्वागत किया । और इस पदोत्सव के कार्यक्रम को अपने-अपने प्राणों से सन्धि सम्पादित करने के लिए आचार्य जी की सेवा में समस्त प्रार्थना भी की । परन्तु संघ के उद्भवाय सज्जनों ने इन महोत्सव के कार्यक्रम को सम्पादन करने के लिए मन्दसौर के क्षेत्र को ही उपयुक्त माना



तत्र स्थले समृतपूरुपाणां, शब्दं समाकण्यपुराङ्गनानाम् ।  
 आचार्यवीक्षा तृपिते क्षणानामेवं विधं चेष्टितमाविरास ॥  
 अट्टालमारोहति किञ्च फाल विलोल पाद ललनासमूहं ।  
 पाणिन्धमत्वेन वभूव भङ्गः परस्परं काञ्चनकाङ्क्षणानाम् ॥

चन्द्रजी श्रीश्रीनाल केशरीमलजी गादिया जीतमलजी बोधरा,  
 नन्दरामजी चौधमलजी श्रीश्रीनाल, चौदमलजी बोहरा, जीतमलजी  
 चाणोदिया प्रभृति सय के अग्रगण्य धावकों एवं आविष्कारोंने अचरित्र-  
 नायकजी की अत्यधिक सेवा-भक्ति करके ज्ञान-सम्पादन किया ।

पाठको ! हमारे अचरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी म० को अजमेर में  
 सर्वानुमति से अखिल भारतवर्षीय पूज्यपाद मुनि-मण्डल द्वारा पूज्य  
 श्री हुबनीचन्द्रजी म० की सम्प्रदाय के लिये उपाध्याय का पद मिला  
 था । तथापि आपको उसका विचित्र भी अभिमान नहीं था ।

पाठको ! समय की विचित्रता के कारण कार्य कुछ का कुछ बन  
 जाता करता है । जगत्-विरहात् प्रतः स्मरत्यै पूज्य श्री हुबनीचन्द्रजी  
 महाराज मा० की सम्प्रदाय में विस्ती वारणवश हो रहा था गये थे ।  
 उन दोनों दलों में परस्पर एवद्यता स्थापित करने के लिये कई स्थानों  
 पर कई बार प्रयत्न किया गया । किन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई ।  
 तब शान्त्र-विराट्द बाल-मन्त्रकारी श्री मन्नालालजी पूज्य श्री मन्ना-  
 लालजी म० के सह प्रयास से अजमेर में एतद् साधु-सम्मेलन के समय  
 इस पातस्परिबन्धनस्य का अन्त हो गया था । अर्थात् पूज्य श्री  
 मन्नालालजी म० और पूज्य श्री जवारिलालजी म० इन दोनों दलों  
 के साधुओं में परस्पर सुख हो गई थी । और दोनों दलों के मुनियों  
 में परस्पर पन्द्रह स्यदार और आहार-मार्ग आदि सद् हो गया था ।  
 इन परस्पर पूज्य श्री मन्नालालजी म० के समुदायन करके अस्तर





भाचार्य—आचार्य-पदारोहण समारोह-जनित, गगन-भेदी जय-घोष को श्रवण करके नगर की महिलाएँ आचार्य श्री के दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो उठीं। और वे दर्शन की चेष्टा करने लगीं। उन मनोरंजनों में वैठी हुई महिलाओं के सुवर्ण-कंकणों के पारस्परिक-संघर्ष से रम्य शब्द उत्पन्न हो रहा था। उस समय वे सौभाग्य-सिन्दूर-विन्दु से सुशोभित हँस-मुखी महिलाएँ मुनिनाथ की स्तुति में लीन थीं।

शहर से बाहर कुछ दूर पधारे थे। जद आप सदैव की भौति शौचादि से निवृत्त हो स्थान पर पधारे, तो वहाँ पर आप क्या देखते हैं, कि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं से व्याख्यान का यह विशाल स्थान खचाखच भरा हुआ है। आप श्री को बाहर से पधारते देख कर समस्त उपस्थित चतुर्विध श्री संघ ने खड़े होकर स्वागत सत्कार और विनम्र पूर्वक आपके प्रति बहुमान प्रकट किया। अचानक इतनी विशाल मानव-सभा देख कर आप अपने हृदय में विचार करने लगे, कि आज गुरुवर्य श्री के मनीष चतुर्विध श्री संघ का यह दृढ़त्व मनुह क्यों एकत्रित हुआ है। इस महत्व पूर्ण कार्य का गुप्त भेद आपको किसी ने भी नहीं बताया था। सदैव की भौति व्याख्यान देने के लिये आप अपने पट्टम्य आसन पर आकर विराजमान हुए। उस समय आपके पूजनीय गुरु-वर्य श्री ने व्याख्यान में पधार कर अपने पवित्र मुखारविन्दु से परनादा कि " हे देवानुमिद ! मैं आज चतुर्विध श्री संघ की सर्वानुमति से संघ के समस्त श्री गुरुचन्द्रजी न० को अपने हाथों से आचार्य-पद हनन अकल्पित करते हुए पट्टम्य पट्टम्य स्वर्गीय गुरु श्री नन्मालावर्ज न० के स्थान पर इन्हे पट्टम्य पट्टम्यवरी घोषित करता हूँ। आज मैं चतुर्विध श्री संघ आपकी आज्ञा में रहूँगा। " स्थिर मुनि श्री के इन वचन

नार्योऽभुः स्फाटिककुटुमाग्रसुवर्णवातायनसन्निविष्टाः ।  
 आकाशमार्गेण मुनीन्द्रवीक्षा गता इव स्वर्वनिता विमानैः ।  
 आस्याय हस्या नयनेपुलास्या सिन्दूरविन्दूदयशोभिभाला  
 तुस्ताव स्त्रीजनपङ्क्तिरार्यं पूज्यं क्षमासागरकं मुनीशम् ॥

यश प्राप्त कर लिया था । अजमेर के मुनि-सम्मेलन का कार्य-क्रम पूर्ण होने के पश्चात् आप मुनिवरों के कन्धों, डोली में बैठ कर व्यावर शहर में पधारे । यहाँ पर आपके शरीर में यकायक असाता-वेदना कर्म का उदय हुआ । इसके उपस्थित होने के पूर्व ही आपने अपने कर्त्तव्यों की आलोचना योग्य मुनिवरों के सम्मुख कर ली थी । प्रमुख मुनिवरों ने अब अवसर देख कर आपको समाधिस्थान (आजीवन अनशन व्रत ) करवा दिया था । थोड़ी ही देर के पश्चात् शान्ति पूर्वक श्वासोश्वास लेकर आपने अपने इस भौतिक शरीर को सदा के लिये छोड़ दिया । और आपकी आत्मा दिव्य गति को प्राप्त हो गई । अर्थात् आपाठ कृष्णा द्वादशी के दिन आपका स्वर्गवास व्यावर में हो गया ।

इधर रतलाम में हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी म० ने चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् विहार नहीं किया । और आप गुरुवर्य श्री जी की सेवा में रतलाम ही में विराजमान रहे, आपको स्वप्न में भी कभी यह विचार उत्पन्न नहीं होता था कि मुझे भी आचार्य-पद मिले तो अत्युत्तम हो । परन्तु भविष्य में क्या-क्या होने वाला है ! यह तो आगम-विहारी (ज्ञानी) के आतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता है । अस्तु

फादरगुन शुक्ला ३ का सुखद मंगल-प्रभात था । चरित्रनायकजी प्रति-ज्ञेखन गुरु-वन्दन स्वाध्याय आदि करके शौच-निवृत्ति के लिये





जिन-दिवाकर इह चौयमलश्रात्वरवाणीप्रयुक् ॥

युवाचार्यपदसमलंकृतो, ध्यानीद्वगनलालजित् ।

उपाध्यायविस्दसमर्चितो मुनिमहसमल्लभुनियमगः ॥३४७॥

रतलाम ने स्वदित पंतिन मुनि श्री नवलाल जी म० एवं आप श्री की सेवा में सम्प्रदाय के सम्मल मुनि उपस्थित हुए । और वैनाय नाम के सुहृद पत्र में सम्मेलन हुआ अपनी सम्प्रदाय के समस्त उपस्थित मुनियों के समक्ष आचार्य श्री जी ने फरमाया, कि मेरी वृद्धावस्था है अतएव आप मुनिवरों की सेवा ( देख भाल ) करने के निमित्त मैं अपनी उपस्थिति में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देना चाहता हूँ । आप सर्व मुनिगण इस पत्र के योग्य मुनिवर को देख कर अपना नाम प्रकट करें । इसी प्रकार उपाध्याय गरी और प्रवर्तक पत्र के लिए भी आप सब प्रकट करें । तब आचार्य श्री की आज्ञा से और अशुविध मद्य को सर्वानुमति से अतिरिक्त ५० मुनि श्री चौधमलजी म० को तीन दिवस, पतिन मुनि श्री हरनमाल जी म० को सुवचन, पतिन मुनि श्री महामहारी महामल को उपाध्याय पतिन मुनि श्री पराचन्द जी म० को गणि, गणनी और मंत्रकाल जी म० और पतिन मुनि श्री हजरीमल जी म० को प्रवर्तक तथा पतिन मुनि श्री वैनायजी महामल को सम्प्रदाय के पत्र में विद्वित जिन जाने का पूर्ण निश्चय हुआ । इस सुहृद समाचार के पढ़ने पर अनेक पत्र ऐसे—मन्थुल, लखपुर, मन्थौर, बही मन्थौर, महाराज, जल्ला कादि आदि स्थानों के पत्रों से हुए उपरोक्त पत्रों के प्रकट होने की विनायक महामल करने पत्रों से करने के लिए पत्रों से के द्वारा से विद्वित, जाने पत्रों । पत्रों से सम्मल समाचार के द्वारा उपरोक्त समाचार के सम्मल होने का निश्चय हुआ ।





















































साहित्य निष्णात मन वचन और काया से पवित्र तप, दया, दान, शम और क्षमा, आदि गुणों के भण्डार मुनि श्री हीरालाल जी का स्वर्गवास विक्रम संवत् १९७४ मे हुआ ॥३८८॥ शीलव्रती, ध्यानी, तपस्वी, ज्ञानी, शान्त स्वभावी, और गम्भीराकृति मुनि श्री नन्दलालजी म० का स्वर्गवास सम्वत् १९६३ मे ८१ वर्ष की अवस्था मे हुआ ॥३८९-९०॥

स्वामिन् ! त्वच्चरणे पतन्ति विमलात्मानोजनाः केवलम्,  
यैते स्युर्भुविभूरिमूर्द्धमण्ययश्चित्रं समानोदयाः ।

धृत्वा ख्यातिमिमां तवेश ! विशदां भाग्यादिलब्धर्द्धयः  
के केन भ्रमरी भवन्ति चरणाम्भोजे सदास्वादिनि ॥३९१॥

पीत्वा त्वद्वचनामृतं जनगणाः सुस्थः समाध्युद्भवो,  
देवानां निकरस्तु तत्समसुधा तृप्तस्तथा चाभवत् ।  
त्वं त्वं वै भुवनोपकारकरणे नैवासितृप्तस्तथा,  
त्वामेवं विबुधाः स्तुवन्ति गुणेषु प्राप्तै करेखं समम् ॥३९२॥  
श्लाघा ते मुनिराज ! कस्य वदने जिह्वेव नो विद्यते,  
विद्या सापि न कांस्ति देव तव या जिह्वांतमासेदुपी ।  
सन्ति त्वद्यनघाः पवित्रितदिशः सम्यग्गुणावापरे,  
मत्वेतीव समन्वजैनजनता त्वां स्वामिनं मन्यते ॥३९३॥

भावार्थ— आपार्य भी के इन शिनामद् वल्लभ को



ददतु नः सुकृतं भुवि निर्ममा,

शररमामरमामरमानिता ॥३६५॥

भावार्थ—विभिन्न वाद-विवाद स्वरूपी उन्मत्त हाथियों के के लिए सिंह के समान, कपट रूपी जाल के भञ्जन के लिए हस्तीस्वरूप, संसार समुद्र से पार करने के लिए जहाज के समान धैर्यरूपी सिंह के निवास के लिए गुफा तुल्य हे गुरु महाराज ! आपके चरण-कमल, मुक्तिरूपी फल की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं। आपके ऊर्धी अमल कोमल चरणारविंदों की भक्ति के द्वारा संसार के भव भय प्रसित अजय-निरामय सुख प्राप्त हो ॥३६४-३६५॥

श्रुत्वेदं स्ववर्तं प्रसन्नमनसाऽय ख्वचन्द्रन्तः

आशीर्वादिततेः भवन्तु सुखिनः सर्वे जगत्प्राणिनः ।

कामक्रोधमहामदादिरिपवो यान्तु जयंनर्घतः,

सर्वे सन्तु निगमया नयवृता धर्मश्रिया शोभिताः ॥३६६॥

भावार्थ—मुनियों द्वारा की गई हर क्षुति को भूल करके हमारे परित्रनारक भावार्थ को ख्वचन्द्र जी ने प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद प्रदान किया, कि जगत् के समस्त प्राणी निगम धर्म-निष्ठ और शोभावनामय हों। तथा कामक्रोधमहामदादिरिपवो यान्तु जयंनर्घतः परते हुए परस्पर सुख और शान्ति के प्राप्त हों ॥३६६॥

श्रीचन्द्रकः सविपदन्धुनेको जडाह जैनं च्यननादि हिन्वा



पर्जन्यकाले निगते जनानां, दिव्यागराप्रभृतिमंत्रकानाम् ॥  
 संप्रार्थनायोजितगज्जनानां, संप्रार्थनाः प्रार्थनयोजिताया।  
 समागतास्तत्र मुनीश्वराय, धर्मस्य तत्तार्थप्ररूपकाया ॥३६८  
 खण्डेलास्तव्य जनास्तु तेषामनेकवारं निनयं विद्ध्युः।  
 संगत्य पार्श्वे मुनितल्लजस्य धर्मस्य तत्तार्थं पिपामितास्ते ॥

भावार्थ—इस संवन १६६३ के चातुर्मास में हमारे चरित्र-  
 नायक जी के सदुपदेश से एक चम्पक सेन नामक क्षत्रिय भाई  
 ने दुर्व्यसनो को त्याग कर जैन धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार  
 चरित्रनायक जी के प्रभाव से गत १८-१६ साल में जितनी तपस्या  
 नहीं हुई थी उतनी तपस्या इस चातुर्मास में हुई। बहुतसे उपवास  
 तथा ३१ तैले, २८ चोले, २० पचौले, १८ अठ्ठाइयां आदि के  
 अतिरिक्त धर्म-ध्यान संवर और पौषध व्रतादि हुए। चातुर्मास की  
 पूर्ति के समय आपकी सेवा में देहली, आगरा, अलवर, टोंक,  
 अजमेर, किशनगढ़, और खण्डेला आदि कई गांवों के श्री संघों  
 की ओर से अपने-अपने क्षेत्र में चातुर्मास की विनंतियाँ तार और  
 चिट्ठियों द्वारा आईं। तथा खण्डेला के भाइयो ने तो चार-पांच बार  
 चरित्रनायक जी की सेवा में आकर अपने क्षेत्र को पावन करने  
 के लिए बहुत ही आग्रह किया ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥ ३६९ ॥

श्रीनारनौलात्पटियालसंस्थान्,  
 पत्राण्यदात् श्रीमुनियोऽमरेन्द्रः ।

# आदर्श चरितम्



आदर्श चरितम् के निर्माता श्री १९०० ई. में  
श्री १९०० ई. में श्री १९०० ई. में श्री १९०० ई. में  
श्री १९०० ई. में श्री १९०० ई. में श्री १९०० ई. में





अभिलाषा लगरही हैं । सती जी श्री धनदेवी जी (जन्मवाली) अ-  
 स्वस्थ हैं । वे आपके दर्शनों के लिए बहुत ही लालायित हो हो रही  
 हैं । अतएव शीघ्र ही पधार कर दर्शन देने की कृपा करें” । इन  
 सभी समाचारों को लक्ष में रख कर आचार्य श्री जी ने खण्डेला  
 की भूमि को स्पर्श करके नारनौल होते हुए देहली पधारना ही  
 आवश्यकिय और उचित समझा । और तदनुसार मार्गशीर्ष कृष्ण  
 प्रतिपदा को आपने जयपुर से विहार कर दिया ॥४०१-४०२-४०३॥  
 विहारकाले मुनिपस्य पुर्याः, विद्यालयीयाः वसनैः सुनद्धाः॥  
 जयैर्वचोभिःशुभरस्यवाचः, विद्यार्थिनस्तत्रपुरप्रचेलुः ॥४०४  
 प्रतिष्ठिताः सज्जनश्रेष्ठिवर्गाः, शिवांसिपादौमुनिराजकीयौ॥  
 सप्रश्रयंप्राध्वनिसँनमनाः, शोभांविशेषांपरितप्रचक्रुः ॥४०५  
 जैनेतराः जैनजनाश्च नार्यः, केचिन्नमन्तः मुनिपँ तदा-म् ।  
 केचिच्चसद्भानिगताःमनुष्याः, सँदर्शनैःस्वँसफलँविदध्युः ४०६  
 उपवनमघिशिशये श्रेष्ठिचम्पेन्दु पत्नी,  
 विनययुतशुभैः सः प्राग्रहै साधुराजः ।  
 शरगतदश संख्यां तत्र वासँ दिनाना,  
 मथगमनमकार्पात् भक्तिपूर्णां खण्डेलाम् ॥ ४०७॥

भावार्थ—विहार का दृश्य बड़ा ही अजीब और निलजण था  
 श्री जैन मुवोध स्कूल के विद्यार्थी गण एक ही युनीफार्म (ड्रेस) से  
 सुसज्जित हो कर गगन भेड़ी जय घोष करते हुए आगे-आगे चल



अभिलाषा लगरही है । मनी जी श्री धनदेवी जी (जन्मवाली) अ-  
 स्वस्थ है । वे आपके दर्शनों के लिए बहुत ही लान्तायिन हो होरही  
 हैं । अतएव शीघ्र ही पधार कर दर्शन देने की कृपा करें” । इन  
 सभी समाचारों को लज में रत कर आचार्य श्री जी ने रखेला  
 की भूमि को स्पर्श करके नागनौल होने हुए देहली पधारना ही  
 आवश्यकीय और उचित समझा । और तदनुसार मार्गशीर्ष कृष्ण  
 प्रतिपदा को आपने जयपुर से विहार कर दिया॥४०१-४०२-४०३॥  
 विहारकाले मुनिपस्य पुर्याः, विद्यालयीयाः वसनैः सुनद्धाः॥  
 जयैर्वचोभिःशुभरम्यवाचः, विद्यार्थिनस्तत्रपुरप्रचेलुः॥४०४  
 प्रतिष्ठिताः सज्जनश्रेष्ठिवर्गाः, शिवांसिपादौमुनिराजकीयो।  
 सप्रश्रयँप्राध्वनिसँनमनाः, शोभांविशेषांपरितप्रचक्रुः ।४०५  
 जैनेतराः जैनजनाश्च नार्यः, केचिन्नमन्तः मुनिपे तदा-म् ।  
 केचिच्चसद्भानिगताःमनुष्याः, सँदर्शनैःस्वँसफलँविद्ध्युः ४०६  
 उपवनमघिशिश्ये श्रेष्ठिचम्पेन्दु पत्नी,  
 विनययुतशुभैः सः प्राग्रहै साधुराजः ।  
 शरगतदश सँख्यां तत्र वासँ दिनाना,  
 मथगमनमकार्पोत् भक्तिपूर्णं खण्डेलाम् ॥ ४०७॥

भावार्थ—विहार का दृश्य बड़ा ही अजीब और निलक्षण था  
 श्री जैन सुबोध स्कूल के विद्यार्थी गए एक ही युनीफार्म (ड्रेस) से  
 सुसज्जित हो कर गगन भेदी जय घोष करते हुए आगे-आगे चल





के पथिक बनाए । रास्ते में आहार पानी गक्रान आदि के अनेक परिपहों को सहन करते हुए आप खण्डेला पधारे ॥ ४०४-४०५-४०६-४०७ ॥

गव्यूतिपंक्तिं प्रययुर्मुनीशम्, खंडेलवास्त व्यजनाः भवन्तम् ।  
 यत्रैतिनोसाधुजनः प्रकण्ठात्, तत्रैवसंसैकतपूर्णमार्गं ॥४०८॥  
 ग्रामाज्ञपुंसां प्रतिबोधनाय, जलादिपीडां परिपोहमानः ।  
 शीततुं कालोत्तरठोऽपि धर्मप्रचारणाय समुद्रः प्रन्त्ये ॥४०९॥  
 खण्डेलपुर्यं भवतः सरण्यां, व्याख्यानतुर्यं प्रबभूव चैकम्  
 विद्यालयेऽत्र जनैः पूर्णैश्चाशतानां नरवृन्दकानाम् ॥४१०॥  
 भूमा तपस्यापि बभूव नृणाम्, मुनेः प्रभावात्कृतकर्मदात्री ।  
 ततो विहारं पुरिनारनोले, चकारधर्मेन्दुतमोभि हन्ता ॥४११॥  
 गव्यूति पञ्च कविजिन्सुरेन्द्रः, मुनीशकं प्रापमुनिद्वयेन ।  
 जयादिशब्दैर्नगरे प्रवेशो, बभूवखूत्रेन्दुमुनीशस्य ॥४१२॥  
 दुलीन्दु हर्म्ये वसनं चकार, शुभाग्रहैः श्रेष्ठिदुलीन्दुकैः सः  
 देशामृतै धार्मिकसंघकं तम्, सिञ्चन्मुनीशोऽत्र सुशान्तचेताः ।  
 श्रीपृथ्वीचन्द्रस्य मुनीश्वरस्य, प्राचार्यं पट्टोत्सवके तद्वैव ।  
 श्रीफूलचन्द्रोमदनोमुनिश्च, समागतौ माघसिते जयायाम् ॥  
 भावार्थ—खण्डेला में आपके चार-पांच सार्वजनिक व्या-  
 ख्यान हुए । एक व्याख्यान सरकारी स्कूल में हुआ । जन संख्या

लगभग चार सौ पांच सौ हो जाती थी। वहा त्याग प्रत्याख्यान तथा तपश्चर्या अच्छी हुई। खरडेला से विहार कर आप नारनौल की तरफ पधारे। तब आपके स्वागतार्थ नारनौल से लगभग दस-बारह कोम की दूरी पर कविवर्य ५० मुनि श्री अमरचन्द्रजी न० और श्री श्रीचंदजी न० आपके नामसे पधारे थे। जिन दिन आपका शुभागमन नारनौल में हुआ, उस दिन भी आपके स्वागत के लिए चतुर्विध श्री ऋषि आपके नामसे पैगदार से पहुंचा था। तथा ६० मुनि श्री तृतीयचन्द्रजी न० ( जो आपका स्वागतार्थ है और श्री रामलालजी महाराज कादि मुनि ) ने भी प्रसन्नता पूर्वक आपके नामसे पठने का प्रष्ट उपाय था। १०० न भेरी जगन्नेप के साथ आपका पदार्थ का शर से बरस पड़ता था। श्री रेड्डीजीका भी पैर से टपेरी से आपका स्वागत था। आप स्वर्ग-परोक्षर का शुभ शुभ शर सुनकर तब ही आपका शुभ स्वप्न पर सुनिर्भर मानना नहीं कर लीये मुनि श्री कनकचन्द्र महाराज ( पण्डित ) ने भी पठने का उपाय किया।





ध्यानाग्नि-इग्ध-परिवर्द्धित-पाप पुंजः ।

पूज्यश्विरं-विजयतां-मुनि खूबचन्द्रः ॥४॥

भावार्थ—अनेक राष्ट्रों में मनुष्यों से पाद-पूजित, शान्ति के विहार के लिये, सुन्दरलता मण्डप, बढ़े हुए पाप समूह को ध्यान की अग्नि से जलाने वाले, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हा ॥४॥

दूरीकृताखिल-ममत्व-तमो-वितानः ।

कर्षर्ष दर्ष दलने सफला-भियानः ॥

क्षान्त्या-विनिर्जित-कदाग्रह-कोपमानः ।

पूज्यश्विरं-विनयवां-मुनि खूबचन्द्रः ॥५॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ममता के अन्धकार समूह को दूर करने वाले, कामदेव के अभिमान को चूर करने में सफल है, आरम्भ जिनका क्षमा से, कुत्सित कामह, कोप, और अभिमान को जीतने वाले पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥५॥

साक्षादखण्ड-शुभ सत्य-दयावतारः ।

शास्त्रावगाहन-परिष्कृत-पद्विचारः ॥

पूर्वाम-संघ-कृत-जैनमत-प्रचारः ।

पूज्यश्विरं-विजयतां-मुनि खूबचन्द्र ॥६॥

भावार्थ—अखण्ड शुभ, सत्य और दया के अवतार, शास्त्रों

के श्रद्धागाहन से परिष्कृत-विचार युक्त, नगर, ग्राम और संघों में जैनमत के प्रचारक, पूज्य श्री मुक्ति खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥६॥

## उपसंहार

व्याख्यातैः सुमनोहरेः पविपदे. श्रद्धान्युतानमोदियन् ।  
 नाना-जन्म-विवृद्ध कर्म-फलानां, मूलं-समून्मूलयन् ॥ श्रेष्ठे-  
 मोक्ष पथे सुयुक्ति शतकैर्भव्याज्जनान्स्थापयन् । पृथ्या-  
 चार्य वरः सदैव जयतान्, सुप्तं जगद् बोधयन् ॥७॥

भावार्थ—सुमधुर व्याख्यानो द्वारा श्रद्धा युक्त मनुष्यों का आनन्द बढ़ाने हुए. अनेक जन्मों के कारण बढ़े हुए कर्म फलों की मूल को खटावने हुए, सैकड़ों युक्तियों द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों को सुन्दर मोक्ष मार्ग से ले जाने हुए. सोये हुए जगत् को जगाने हुए ।  
 भावार्थ—सदैव विजय प्राप्त करें ॥७॥









लोकाः दानरास्तदात्मभवन्शोभोत्पथैर्भाविताः ॥

भावार्थ—देहली के श्री सध ने आवका शानदार स्वागत किया । और चानुर्मान के लिए छत्वन्य घाग्रह किया । अतः संवत् १६६४ का चानुर्मान आगने राज देहली में किया ॥ ४ ५ ॥ ४१६ ॥

इसी वर्ष आपसी सेवा में निवास करने वाले तपोनिष्ठ हिन श्री छन्दाकाल जी महाराज ने देवल गर्म जन के आशर से १३ दिन की तपधर्या की । तपस्या की पृति पर दास राजे के शोभे, धर्मनायियों ने आशर तपोत्व की घोषा के परिणत देही की रूप दिन दया, दान, परोपकारदि कृत्य से शोभित आशर । दास जी के लीसे दूर से आया शोभे कई शोभे शोभे तपोत्व की आशा पूर्ण कराया ।

पदार्थ भूरा मती विनासे, सेव शोभत सुदुःख  
 सुदेवार्थि धर्मि गर्म सु १३ दिने दाते शोभा रत्न द  
 धर्मि शोभा शोभोत्पथैः शोभोत्पथैः शोभोत्पथैः  
 पदार्थ शोभोत्पथैः शोभोत्पथैः शोभोत्पथैः

... ..  
 ... ..  
 ... ..  
 ... ..





चातुर्मास चांदनी चौक वाले श्री महावीर जैन-भवन की विशाल विल्डिंग में हुआ ।

चतुर्थमल्ला श्रयनेमिचन्द्रः दिनानि तुर्याश्वनितानि तेपे ।  
 तोयस्य तप्तस्य शुभा श्रयेण, पूर्वाणि कर्माणि विचूर्णयिष्यन् ॥  
 श्रीखूबचन्द्रस्यमुनिश्छवेन्दुः तुर्याक्षिमंख्याप्रमितं दिनानाम् ।  
 पर्यूपणे कर्म निवर्हकाणि, तपांसि तेपे जलमात्र सेवी ॥  
 दुग्धस्य लोकाःशुभपारणान्ते, चक्रुः सुदानं जिन भक्तिलीनाः ।  
 निर्ग्रन्थसप्ताहपरं सुज्ञान, दानं दशौ तत्र चतुर्थमल्लः ॥

भावार्थ—इस वर्ष के चातुर्मास में धर्म-ध्यान और तपश्चर्या अच्छी हुई । निर्ग्रन्थ-प्रवचन-सप्ताह सानन्द मनाया गया । तपस्वी श्री छद्वालाल जी म० तथा तपस्वी श्री नेमिचन्द्र जी म० ने केवल गर्म जल के आधार से क्रमशः ३४ और ४७ दिन की तपश्चर्या को तप-त्रतों की पूर्ति पर संघ की ओर से चारह दरी के नीचे दूध की प्याऊँ दी गई थी । और उस दिन बहुत-सा उपकार हुआ । बाहर गावों से दर्शनार्थियों ने उपस्थित होकर दर्शन और चरण-स्पर्श का लाभ लिया था । चरित्रनायक जी की शान्तवृत्ति, वैराग्य, और आदि सद् गुणों को समाज भली प्रकार जानती है । आप अधिकांश तात्विक ज्ञान की बातें और सूत्र-रहस्य कण्ठस्थ याद हैं ।

निर्ग्रन्थसप्ताहमनेकलोकाः पुरीञ्च ग्रामान् प्रविहाय याताः  
 श्रीशक्रपुर्याः शुभसंघ कस्तानातिथ्य सत्कारतया प्रपेदे ।  
 प्रभावना धर्मसुलीन भावा तत्रस्त्य जनता हर्षे प्रमग्ना ॥  
 गार्हस्थ्यकार्यं प्रविहाय सद्यः धर्मस्य संराधानतत्परा भूम् ॥

उदयपुर नरेशः पूज्य श्री खूबचन्द्रात्  
 प्रथितसुखदशान्तिः शास्त्रतत्त्वस्य.....  
 जनमतशुभतत्त्वं चौथमल्लात्तथैव,  
 जिनमतशुभसूर्यात् ख्यातवक्तुः पृथिव्याम् ।  
 निगदितमनुकर्या भूरि भूरि प्रशंसाम,  
 विदधदन्तु शुभं स्वं तत्त्वसंलीन भावा ।  
 गदतु गदतु धर्मं मे हितं भावयन्तौ,  
 पुनरपि शुभवाणीं स्वच्छचेताः बितेने ॥

भावार्थ—इसी वर्ष अर्थात् १६६५ के कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी  
 रविवार तदनुसार ता०६-११-३८ को देहली में उदयपुर नरेश  
 श्रीमान्.....ने हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द्र  
 जी महाराज एवं जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री चौथमल  
 जी महाराज का व्याख्यान लगभग एक घण्टे तक श्रवण करके  
 बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ।

# सप्तम परिच्छेद

## आचार्य-क्रमावली

पूज्य श्री हुक्मेन्दुजिन्मुनिरभूताश्च। च्छिवेन्दुर्वभौ,  
पूज्य श्रीरुदयाब्दिजिच्चवृते श्रीचौथमल्लः पुनः ।  
श्री श्रीलालमुनिश्चपूज्यपदवीं मन्नेन्दुऽमादधौ,  
खूवेन्दुश्चविराजते शुभपदे भावी छगनल लजित् ॥

(१) पूज्य श्री हुस्मीचन्द्र जी महाराज ।

(२) पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज ।

(३) पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज ।

(४) पूज्य श्री चौथमल जी महाराज ।

- (५) पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज—(५) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज  
(६) पूज्य श्री खूवचन्द जी महाराज  
(७) युवाचार्य श्री छगनलाल जी म०

## संक्षिप्त-परिचय

द्वार स्थितटोडग्रामवसनो जात्यौसवालमहान्,  
पूज्यश्रीचपलोटगोत्र तिलको हुक्मेन्दुजिन्नामकः ।  
नन्दर्षिद्विप भूमिते शुभतमे श्रीमार्गशीर्षे वरे,  
श्रीलालेन्दुमुनीशतः शुभपरो जग्राह दीक्षामयम् ॥











सप्ताकाशनवैकसंख्यकमिते हुक्मेन्दुना दीक्षितः,  
 भूपं संदिदिशे प्रतापगद्वपं श्रीजावरास्वामिनम् ॥  
 वस्वदिग्रहभूमिते जिवजितं संवेगिनं पालिगम्,  
 शास्त्रार्थे परिजित्य कृष्णजलधिं शिष्यं तदीयं नदा ।  
 सम्यक्त्वं परिशिष्यदीक्षितमलं चक्रे सभायां जयी,  
 सोऽयं रत्नललामके दिवमयात् तुयाग्निन्देन्दुके ॥

(३) पूज्य श्री उदय सागर जी महाराज—जय जीवपुर  
 ( नारवाड ) के निवासी थे । आपका जन्म बड़े नाथ गोमदात  
 जाति के सीवेनरा गोत्र में हुआ था । आपने सं० १६०९ में पूज्य  
 श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के पास दीक्षा स्वीकार की थी । आपने  
 जावरा के नवान नातव श्री गोपन मोरम्बड सां जी की गौर प्रताप  
 गद के नरेण श्रीमान् उदयमिर ने मा० पाणि की राज-सत्कारों  
 को उपदेश प्रदान किया था । सन् १६२८ में आपने पानी  
 ( नारवाड ) में एक सम्देगी साधु श्री गिरजी रामजी के साथ इस  
 शर्त पर शरणा र्थ करन निश्चय किया था कि पराजित होने वाले  
 पर लो, आपका एक शिष्य जितना पर जी जेना होगा, आपका  
 शरणा र्थ होगा । इन शरणा र्थ के बाद ही विचर हुई । एक वर्षी-  
 नुसार सम्देगी साधुजी ने आपने एक शिष्य श्री गिरजामाजी  
 को शरणा र्थ देना के शरणा र्थ का किया । आपने भी जितना  
 नारजी को हुए शरणा र्थ की शिष्य देना जेना है, वह ही  
 दीक्षा किया । आपका शरणा र्थ सं० १६५० में शरणा र्थ के



महागजाद्यो ऋ आपने प्रतिबोध दिया । आपने भी गिर्यों का परिचय कर दिया था । मंथन १६७५ के जयतारण ( नागवाह ) में आपका स्वर्गवान हुआ ।

मन्नालालजिदौमवाकुलभृन्नागोरीगात्रे मणिः,  
सर्वाङ्गामुद्रयाच्चिधनामकमृतेर्वरदम्बिनन्देन्दुकै ।  
लान्धा रत्नललामवामिसुमृनिः प्रार्थित्य शास्त्राणि च,  
प्राप्याज्जेरपुरेभमेलयशः ग्राह्याद्भवन्ते स्वयं न ॥

(५) (६) पद्य की मन्नालालजी महागज—आप स्वयं ( गान्धा ) के निदर्श में । जो कि आप को स्वयं ही न गौरीगात्र में आपका जन्म हुआ था । मंथन १६७५ के पद्य में स्वर्गवान के रूप में प्रकृत है । आपने गान्धा का परिचय कर दिया था । मंथन १६७५ के जयतारण ( नागवाह ) में आपका स्वर्गवान हुआ ।

मन्नालालजी दौमवाकुलभृन्नागोरीगात्रे मणिः  
सर्वाङ्गामुद्रयाच्चिधनामकमृतेर्वरदम्बिनन्देन्दुकैः  
लान्धा रत्नललामवामिसुमृनिः प्रार्थित्य शास्त्राणि च,  
प्राप्याज्जेरपुरेभमेलयशः ग्राह्याद्भवन्ते स्वयं न ॥



व्यावच्याख्यगतं यथागुणमतं नामावलीनंगतं  
 धर्माश्वनतत्तरं शुभकरं पश्यन्तु भव्याः हृदि ॥६३॥  
 जैनादित्यवृधश्चतुर्थमलजिन् वक्त्रा प्रविष्टो भुवि  
 योगेलीनमनो हज्जगिमलजिन् कन्तुश्चन्द्रो मुखः ।  
 श्रीमान् मौक्तिकजालजिच्च मुमुनिः प्रावर्ततः शान्तिमाह  
 श्रीमान् केशरीमल्लजिन्मुखमुनिः श्रुं हर्षेन्द्र- ॥६४॥  
 विद्याढान चौरजागिमलजिद् प्रावर्ततः पण्डितः  
 पाण्डित्येनयन् लग्जमलजिन् मुखी सुधासाधकः  
 व्यासेवी मुनिनायुनाल जिद्यं शान्तिवक्त्राश्रितः  
 नाहितरश्मिगर्भा एकराष्टकः श्री केशरीनाथ मुनिः ॥६५॥  
 मायाचन्द्रमुनिः महत्कमलजिन् श्री वैशम्पायन-  
 वदास्यतामजिद् विरञ्जित् श्री केशरीनाथ मुनिः  
 ध्यात्तुवायेनिपुत्रोऽयं केशरीनाथ मुनिः केशरी-  
 नदीकेन्दुः मुनिः पञ्चमस्यतेन श्री केशरीनाथ-  
 व देवसेन पुत्रः श्री केशरीनाथ मुनिः केशरी-  
 हीनतामये विद्युत् श्री केशरीनाथ मुनिः केशरी-  
 भावाद् देवसेन पुत्रः श्री केशरीनाथ मुनिः केशरी-  
 वदेन श्री केशरीनाथ मुनिः केशरीनाथ मुनिः





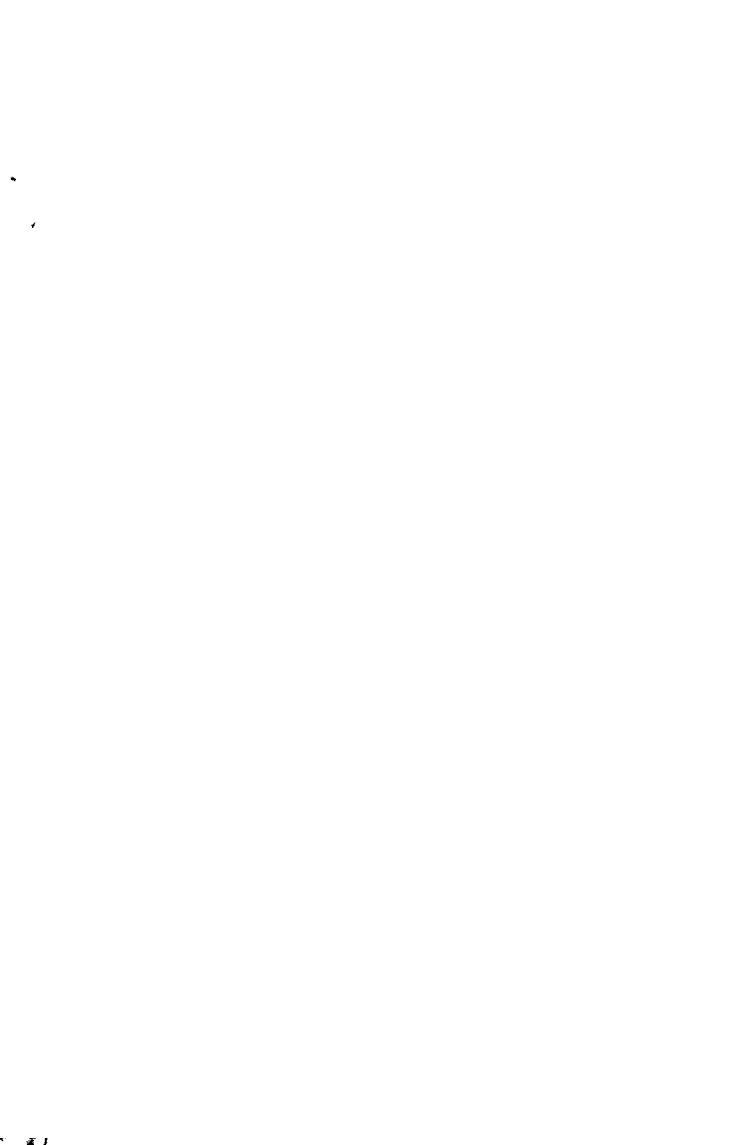
- (२) तपस्वी श्री हजारीमलजी महाराज  
 (३) पंडित मुनि श्री कस्तूरचन्द्रजी महाराज  
 (४) तपस्वी प्रवक्तृ मुनि श्री मोतीलालजी महाराज  
 (५) सलाहकारक मुनि श्री केशरीमलजी महाराज  
 (६) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री मुवलालजी महाराज  
 (७) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज  
 (८) प्रवक्तृक पंडित मुनि श्री हजारीमल जी महाराज  
 (९) चुवाचार्य पंडित मुनि श्री छगनलालजी महाराज  
 (१०) व्यावर्ची मुनि श्री नाथूलालजी महाराज  
 (११) साहित्य-रत्न गणित्यर्च्य पं० मुनि श्री धारचंदजी महाराज  
 (१२) तपस्वी मुनि श्री मयाचन्द्रजी महाराज  
 (१३) उपाध्याय पंडित मुनि श्री महेशमलजी महाराज  
 (१४) स्वाध्यायी मुनि श्री नैरानजी महाराज  
 (१५) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री वृद्धिचन्द्रजी महाराज  
 (१६) व्यावर्ची मुनि श्री गोमानजी महाराज  
 (१७) तपस्वी मुनि श्री उष्णलालजी महाराज  
 (१८) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री नाथूलालजी महाराज  
 (१९) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री रामलालजी महाराज  
 (२०) व्यावर्ची मुनि श्री प्रतापचन्द्रजी महाराज  
 (२१) साहित्य-पंडित मुनि श्री भगनलालजी महाराज  
 (२२) साहित्य-प्रेमी पंडित मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज  
 (२३) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हीरालालजी महाराज



- (४३) " " " वधेमानजी " "
- (४५) " " " नगिनचन्द्रजी " "
- (४८) " " " छोटे चन्पालाजी महाराज
- (४६) " " " रोशनलालजी महाराज
- (५०) व्यावची सुनि श्री वसुधालालजी महाराज
- (५१) व्यावची सुनि श्री नालालजी महाराज
- (५२) विद्याविज्ञान सुनि श्री चन्द्रनमजी महाराज
- (५३) विद्याविज्ञान सुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज
- (५४) वपस्वी सुनि श्री भैरवलालजी महाराज
- (५५) वपस्वी सुनि श्री बांदनलालजी महाराज
- (५६) विद्याविज्ञान सुनि श्री मोतीलालजी महाराज
- (५७) व्यावधानी सुनि श्री वंशीधरजी महाराज
- (५८) वपस्वी सुनि श्री रोशनलालजी महाराज
- (५९) विद्याविज्ञान सुनि श्री इन्द्रनमजी महाराज
- (६०) वपस्वी सुनि श्री भैरवलालजी महाराज

ॐ 'सर्व' 'सर्व' 'सर्व' 'सर्व'





- (४६) " " " वधेमानजी "
- (४७) " " " नगीनचन्द्रजी "
- (४८) " " " छोटे चम्पालालजी महाराज
- (४९) " " " रोशनलालजी महाराज
- (५०) व्यावची मुनि श्री वसंतीलालजी महाराज
- (५१) व्यावची मुनि श्री मन्नालालजी महाराज
- (५२) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री चन्दनमलजी महाराज
- (५३) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज
- (५४) तपस्वी मुनि श्री मेरुलालजी महाराज
- (५५) तपस्वी मुनि श्री चांदमलजी महाराज
- (५६) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
- (५७) व्याख्यानी मुनि श्री वंशीलाल जी महाराज
- (५८) तपस्वी मुनि श्री रेणुलालजी महाराज
- (५९) विद्याजिज्ञासु मुनि श्री इन्द्रमलजी महाराज
- (६०) नवदीक्षित मुनि श्री भँवरलालजी महाराज

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!



11

( २०५ )

### अलवर नरेश

आप मातृभाषा हिन्दी के बड़े प्रेमी और प्रजावत्सल नरेश थे। आपने पद्म श्री स्वचंद्रजी म० के संवत् १६७६ के चातुर्मास में तपस्वी श्री मयाचंद्रजी महाराज के तप-व्रत की पूर्ति के उपलक्ष्य में सारे अलवर शहर में आत्म अगता पलवाया था। अर्थात् आपकी आज्ञा से शहर में सब प्रकार के हिंसाकाण्ड जैसे दूध-दूधाने आदि बन्द रहें थे।

### जयपुर नरेश

आप मातृभूमि के सच्चे प्रेमी और प्रजावत्सल नरेश थे। आपने संवत् १६७७ में पद्म श्री स्वचंद्रजी म० के चातुर्मास में तपस्वी श्री मयाचंद्रजी म० के तप-व्रत की पूर्ति के उपलक्ष्य में सारे जयपुर नगर में आत्म अगता पलवाया था। अर्थात् कि इस शहर आपने अपनी राज-प्रोपणा तथा तप-व्रतों की भक्ति, भद्र-भूलों की भाँटे और तप-व्रतों की पूर्ति के उपलक्ष्य में हिंसात्मक कार्यों की स्मरण नहीं करवाएँ की, शिरो चों की इन शोक दूध पिलवाया गया था। दूध-दूधाने और दूध-दूधाने की पूर्ति आदि सभी हिंसात्मक कार्य इस शहर बन्द रहें।

### भीमान सिंह भीमराजजी महाराज

आप राजा (महाराज) के नाम से ही नाम से जाना-माना  
राम-दास के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपने स्वचंद्रजी म० के  
संवत् १६७७-७८ के चातुर्मास में तप-व्रत की पूर्ति के उपलक्ष्य में





## श्री आचार्य गुण-गायन

[ मानाकार अक्षर—कवित्त ]

अग्नि त्रण गठपर, मठाधिश मठ पर,  
ज्ञान वान शठ पर, करत प्रवन्व है ।  
अर्क तम तर्क पर, घनश्याम वर्क पर,  
फर्क पर जैसे सत तर्क चौ चन्द है ॥  
वाजलवा वृन्द पर, राहू जिम चंद पर,  
पाला अरविन्द पर, पुण मकरन्द है ।  
मोहन महानवान, वानन के वृन्द पर,  
खूब खूबचन्द पर पूज्य खूब चन्द है ॥  
करत उजाला आला, शखरीश निशहीमे,  
पूज्य का उजाला ज्ञान रचत स्वछन्द को ।  
तू तौ शशी देता सुख निश मे सयोगिन कों,  
पूज्य ज्ञान देदे करें मुक्ति आनन्द को ॥  
तू तौ सुख देता है सागर की लहरों को,  
करके प्रदान पूज्य सुख यश मकरंद को ।  
पूज्य गुणुगारं, हृदय सिद्धों को मनादं,  
- मैं चन्द को सराहूं या पूज्य खूबचन्द को ॥२॥

—कवि मोहनलाल जैन लोहा मन्डी

उन्नति के कार्यों में आप उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। आप को शास्त्रों का अच्छा बोध है। कई साधु-साध्वियों को आप ने शास्त्राध्ययन करवाया है। मुनिराजों की अनुपस्थिति में आप श्रावकों को शास्त्र सुनाते रहते हैं। आप धर्म के पूर्ण अनुरागी हैं। आपका भक्ति-भाव प्रसंशनीय है। आपकी देख-रेख में अनेक धार्मिक संस्थाओं का संचालन हो रहा है।

### श्रीमान् दीपचन्दजी सुराना

आप गंगधर (भालावाड़) के उत्साही नवयुवक हैं। सेवा-भावी और धर्म प्रेमी हैं। आप अनेक वर्षों तक श्री जैनोदय-पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम द्वारा संचालित श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस में मैनेजर के पद पर रह कर अपनी कार्य कुशलता का परिचय दे चुके हैं। सहन शीलता इमानदारी और सत्य-निष्ठा आपके जीवन की मुख्य विशेषताएँ हैं। आपको हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान है। आपकी लिपि बड़ी सुन्दर और सुवाच्य है। आपने इस पुस्तक की हिन्दी भाषा के संशोधन में पर्याप्त परिश्रम किया है।

### श्रीमान् बाबू निरंजनसिंहजी जैन

आप कपड़ के प्रसिद्ध व्यापारी और "श्री० अमानतरायजी निरंजनसिंह" की फर्म के प्रोप्राइटर हैं। आप तीतरवाड़ा (जिला मुजफ्फर नगर) के निवासी हैं। धर्मप्रेमी और उत्साही नवयुवक हैं। आप योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। पिता पुत्र दोनों के अच्छे हैं। दोनों सेवाभावी और दानी हैं। दोनों का बड़ा ही सरल और सीधा है। भक्ति-भाव प्रसंशनीय है।





